परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2008

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में होता है। इसके समूल्य प्रकाशन की योजना विचाराधीन है, इसलिए इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह पत्रिका न्यूपा वेबसाइट - www.nuepa.org पर भी नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी से. 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसैट होकर अनिल आफसेट एण्ड पैकेजिंग प्रा. लि. जवाहर नगर, नई दिल्ली, में न्यूपा के प्रकाशन एकक द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

विषय सूची

आलेख

गेसू आर. अरविंद और संजय शर्मा
शिक्षा, सामाजिक गतिशीलता एवं दलित : अंतर्सम्बंधों की पड़ताल 1

हरेश पाण्डेय
गैट्स समझौता और भारत में उच्च शिक्षा 41

सुषमा पाण्डेय और ओम प्रकाश सिंह
दूर शिक्षा माध्यम से विज्ञान विषयों का गुणात्मक शिक्षण 57

महेन्द्र सिंह
हरियाणा में उच्च शिक्षा का विकास : ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीय संदर्भ में वर्तमान परिदृश्य 71

शोध टिप्पणी / संवाद

अजय कुमार सिंह
भारत में समावेशित शिक्षा का स्वरूप 81

श्वेता अग्रवाल और शालिनी दीक्षित
विद्यार्थियों पर नैराश्य प्रतिक्रियाओं एवं शैक्षिक उपलब्धि का प्रभाव 87

कुमुद त्रिपाठी
घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण के बारे में अध्यापिकाओं का दृष्टिकोण और महिला संरक्षण नियम का प्रभाव 101

रीता अवस्थी और उमाशंकर पाण्डे
प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिकता में 'विशेषकर बालिका शिक्षा में' अपव्यय एवं अवरोधन 107

प्रेमशंकर राम और सुरेन्द्र राम
प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के शैक्षिक अपव्यय संबंधी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन 119

चिंतक और चिंतन

देवेन्द्र सिंह
वर्तमान भाषिक संदर्भ में जैक्स देरिदा के चिन्तन की अनुप्रयोगात्मक उपादेयता 131

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

शिक्षा, सामाजिक गतिशीलता एवं दलित
अंतर्सम्बन्धों की पड़ताल

गेसू आर. अरविंद* और संजय शर्मा**

सारांश

सामाजिक गतिशीलता एवं एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में शिक्षा की भूमिका अपने ऐतिहासिक संदर्भ में एक पड़ताल एवं जिज्ञासा का विषय रही है। प्रस्तुत लेख में इस बार शिक्षा की इस भूमिका को दलितों की सामाजिक गतिशीलता के संदर्भ में समझा गया है। इन अर्थों में शिक्षा की भूमिका, वर्तमान में स्वयं पर ही प्रश्न चिन्ह लगाती हुई प्रतीत होती है, क्योंकि लोकतांत्रिक एवं समतामूलक यह समाज अपने भीतर ही एक विभेदकारी तंत्र का लगातार निर्माण किए जा रहा है और इसमें शिक्षा आश्चर्यजनक रूप से ''मौन'' है। शिक्षा की यह चुप्पी एक असाधारण एवं विस्मयादिक स्वरूप में है जिसके कारणों की पड़ताल वर्तमान में गैर-वैकल्पिक, नैसर्गिक एवं अपरिहार्य दिखती है।

शिक्षा सामाजिक बदलाव एवं गतिशीलता की गति, प्रकृति और स्वरूप तीनों को प्रभावित करती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा की प्रकृति, विस्तार एवं गुणक्ता दोनों स्तर पर सामाजिक बदलाव और गतिशीलता से प्रभावित होती है। शिक्षा न केवल बदलाव का एक सशक्त माध्यम ही बनती है बल्कि उस बदलाव की दशा एवं दिशा भी निर्धारित करती है, उसके विकल्प को तय करती है। किसी भी सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक-राजनीतिक आयामों में विस्तारित हो रहा समाज शिक्षा से उसमें संचरण होने की उम्मीद

* रीडर, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110 007
** शोध छात्र, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110 007

करता है।[1] शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के आपसी संबंधों की प्रकृति को समझने की दिशा में इस अध्ययन को दलित समुदाय (विशेषत: वाल्मीकि समुदाय) पर केंद्रित किया गया है। इस अध्ययन में शिक्षा के मायने को एक विशेष संस्थायी अर्थ में लिया गया है। अर्थात् केवल स्कूल के जरिए दी जाने वाली शिक्षा को ही लिया गया है। सामाजिक संचरण एवं गतिशीलता को भी यहाँ एक विशेष सीमित अर्थ में ही लिया गया है। (इसके तीन स्पष्टीकरण हैं, पहला संचरण या गतिशीलता का दायरा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक संदर्भ में है, दूसरा गतिशीलता का अभिप्राय सिर्फ प्रगति नहीं है तथा तीसरा संचरण व गतिशीलता को जाति-समूह के बीच ही देखा गया है

शिक्षा और समाज में अन्योन्याश्रित संबन्ध है। भारतीय समाज में स्कूली संरचना का चरित्र और वहाँ चलने वाली प्रक्रियाएँ स्थान विशेष के सामाजिक ताने-बाने और हलचलों से तय होती है।

इलैया स्कूल संरचना चरित्र तथा यथार्थ को परिलक्षित करते हुए कहते हैं–

''... विद्यालय के अध्यापक का हमारे प्रति रवैया उसकी जातीय पृष्ठभूमि पर निर्भर करता था। अगर वह ब्राह्मण होता तो हमसे घृणा करता। वह हमारे सामने ही हमसे कहता कि कलयुग या बुरे समय का ही असर है कि उसे हमारे जैसे शूद्रों को पढ़ाने के लिए मजबूर किया जा रहा है। ... लेकिन आजादी मिलने के बाद जब विद्यालय हमारे लिए खोल दिये गये तब वहाँ विद्यालय के अध्यापक हमारे खिलाफ थे। पाठ्य-पुस्तकों की भाषा हमारे खिलाफ थी। हमारे घरों में जो संस्कृति थी, वही संस्कृति हमारे विद्यालयों में नहीं थी।''

(इलैया 2003 :11-14)

यह घटनाएँ, संस्मरण भारतीय समाज में अधिकांशत: दिखाई पड़ती है। यहाँ तक कि आम बोलचाल में, व्यवहार में, जाति-सूचक शब्दों का प्रयोग अपमानित करने के संदर्भ में किया जाता है। अनुसूचित जातियों में सर्वाधिक पिछड़े वाल्मीकि भारतीय समाज में सदियों से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण का शिकार हो रहे हैं। यानि देश के बहुसंख्यक हिंदू समाज की वर्ण-व्यवस्था में सबसे निचले पायदान और देश की

[1] दूबे, श्यामचरण (1994), 'शिक्षा समाज और भविष्य', राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली। (प्रस्तावना)

सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के हाशिये पर खड़ा समुदाय यदि कोई कहा जा सकता है तो वह है 'वाल्मीकि समुदाय'। अपने जीविकोपार्जन के लिए मुख्य रूप से 'मैला' ढोने, शौचालय, घर तथा नाली साफ करने, सड़क पर झाड़ू लगाने से लेकर इसी तरह के (अस्वच्छ व अस्पृश्य) कार्य में लगे रहने के कारण इस जाति के लोग हमेशा से समाज में घृणा और उपेक्षा का दंश झेलते रहे हैं और आज भी झेल रहे हैं।

> *'... के बच्चे 'चूहड़े का' कहकर चिढ़ाते थे। कभी-कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। एक अजीब-सी यातनापूर्ण जिन्दगी थी, जिसने मुझे अन्तर्मुखी और चिड़चिड़ा, तुनकमिजाजी बना दिया था। स्कूल में प्यास लगे तो हैण्डपम्प के पास खड़े होकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था, हैण्डपम्प छूने पर बवेला हो जाता था। लड़के तो पीटते ही थे, मास्टर लोग भी हैण्डपम्प छूने से सजा देते थे।'*
>
> *(वाल्मीकि : 2003 : 13)*

साथ ही समाज के भीतर झांकने पर भी ऐसे ही स्वर सुनने को मिलते हैं।

'... यह समाज और सरकार हमारे लिए और क्या कर सकती है; गली/सड़क पर झाड़ू लगाने का डंड़ा उसने बड़ा कर दिया है, मल को रगड़ने-झाड़ने के लिए एल्यूमिनियम का टुकड़ा अब हमारे हाथ में है, मैला ढ़ोने के लिए 'टोकरी' की जगह अब हमें ट्रॉली मिल गई है, जिस पर पहिए लगा दिए गए हैं; हमें 'वाल्मिकी' से 'ऊँची जात' का तो बना नहीं सकती![2]

उपरोक्त वक्तव्य केवल इस समुदाय के भावावेश को नहीं दिखाता वरन् किसी भी लोकतांत्रिक, समतामूलक, समाज के उस चेहरे को दिखाता है, जो संवेदनशील तथा मानवीय होने का दावा करता है, साथ ही उक्त प्रतिक्रिया इस समाज के आधुनिक तथा बेहतर होने के दावे पर भी सवालिया निशान लगता है।

'व्यंग्य' से इतर इसमें इस समुदाय की पीड़ा दृष्टिगोचर होती है, जिसमें 'लोकतांत्रिक समतामूलक राज्य' की अवधारणा तथा उससे जुड़े तमाम सवाल उपरोक्त सन्दर्भ में चिंतन की पुरजोर माँग करते हैं।

21वीं सदी का समाज, अत्याधुनिक समाज होने की परिभाषा पा चुका है पर बावजूद इसके, इस समाज में कुछ ऐसी विसंगतियाँ (गैर-बराबरी, अस्पृश्यता, असवंदेनशीलता, अमानवीयता, शोषण आदि) विद्यमान हैं। जो समाज पर लगातार

[2] दौलत सिंह, वार्ड पार्षद, हजूरी दरवाजा, अलवर शहर से अनौपचारिक बातचीत के क्रम में

नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

झा और झींगरन (2002 : 96) पाते हैं कि *''दलित बच्चे अनावश्यक रूप से शारीरिक एवं मानसिक यातना झेलते हैं। शिक्षक दलित बच्चों में या उनकी परिस्थितियों में सकारात्मक बदलाव को लेकर कोई खास रुचि नहीं दिखाते हैं, उनके अनुसार 'दलित' अकर्मण्य हैं।''*

जाति या नस्ल आधारित भेदभाव या वर्ग आधारित भेदभाव समूची मानव सभ्यता का सर्वव्यापी किंतु दु:खद पक्ष है, जो विश्व के सभी भागों में विभिन्न स्वरूपों एवं प्रकारों में विद्यमान है। जन्म आधारित भेदभाव, मानव जाति के एक बड़े हिस्से पर गंभीर हिंसात्मक प्रभाव डालता है जो प्राय: नागरिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकारों को तय करता है।

भारत में, अछूतों या अस्पृश्य वर्ग के लिए 'दलित' एक नया नामकरण है जो कि सदियों से इस समाज पर हो रहे, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में अमानवीय अत्याचारों को प्रतिबिम्बित करने के लिए पर्याप्त क्षमता रखता है।

आज़ाद मुल्क में जहाँ संविधान प्रत्येक नागरिक को समान अवसर एवं अधिकार मुहैया कराता है, वही आज भी वर्चस्वशाली तबके के लिए दलितों पर होने वाले अत्याचार सामान्य घटना की तरह ही है। हरियाणा का गोहाना हो या महाराष्ट्र का खैरलांजी, दलितों पर होने वाले अत्याचार एक-सी मानसिक अवस्था को दर्शाते हैं। सामाजिक स्तरीकरण सभी मानवीय समाजों की सार्वभौमिक विशेषता है। हालाँकि इसका विस्तार एवं स्वरूप भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न पाया जाता है, साथ ही समय के सापेक्ष एक समाज में भी इसका स्वरूप व विस्तार बदल जाता है। भारत में सामाजिक स्तरीकरण एक विशिष्ट व्यवस्था, जो कि हिन्दू धर्म व दर्शन द्वारा प्रोत्साहित/अनुमोदित है, के रूप में उपस्थित है। भारतीय समाज की विशेषता इसका स्तरों में विभक्त होना है जो कि मुख्यत: धर्म या कर्मकाण्डीय असमानता पर आधारित है।

उपरोक्त संदर्श मूलत: गैर-बराबरी पर आधारित समाज की उस 'चारित्रिक' विशेषता का ही प्रकटन है जो यह दिखाता है कि किस प्रकार एक मानव को दूसरे मानव से केवल 'जाति या जन्म के आधार' पर कमतर या श्रेष्ठतर होने का अधिकार

मिल जाता है। सिर्फ जन्म या सामाजिक मूल्य तथा उसके विचार व नियम मानवीय अस्मिता को निर्मित करने के आधार (शक्तिशाली) हैं। सामाजिक असमानता समाज के स्वयं के विचारों, मूल्यों तथा मान्यताओं का प्रतिफलन है। समाज के किसी वर्ग विशेष के प्रति यह संवेदनहीनता मानवीयता के विरुद्ध एक क्रूर प्रतिक्रिया है जो मनुष्य की मनुष्यता पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देती है।

अम्बेडकर (राजकिशोर : जाति का जहर) के अनुसार जाति भेद वस्तुत: श्रम का नहीं, श्रमिकों का विभाजन है। यही कारण है कि यहाँ नीचे गिराई गई जाति का मनुष्य ऊपरवाली जाति का का पेशा नहीं कर सकता। यहाँ 'भंगी' हलवाई का काम नहीं कर सकता, परचूनी नहीं कर सकता, चाय और पान की दुकान नहीं खोल सकता, पुरोहित नहीं बन सकता। ऐसा कोई सामाजिक कार्य नहीं जिसमें भंगी से ब्राह्मण तक समान भाव से लग सकें।

वस्तुत: अम्बेडकर का श्रमिक विभाजन का यह विचार समाज में व्याप्त, एक विसंगति का ही विस्तार है, जिसे हम रोज-मर्रा के जीवन में व्यवहृत होता देखते हैं। इसकी पृष्ठभूमि में यदि सूक्ष्म दृष्टिपात किया जाए तो यह विभाजन अपने मौलिक एवं वास्तविक स्वरूप में 'श्रम' का नहीं बल्कि व्यक्तियों का विभाजन है जिसका आधार बहुत हद तक सामाजिक-धार्मिक है तथा अपने अंतिम विश्लेषण में 'शोषक एवं शोषित' की चारित्रिक विशेषताओं का स्पष्टीकरण बनता है।

फ्रेरे (1968) इस शोषित वर्ग की विपन्नता (सामाजिक-आर्थिक-शैक्षिक-राजनैतिक) के सैद्धांतिक विश्लेषण में पाते हैं कि इस वर्ग के विषय में स्थापित दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय सिद्धान्त द्वैत तथा अंतर्विरोध से ग्रसित है। उनके अनुसार आक्रांता ही हिंसक हो, यह आवश्यक नहीं है आक्रांत भी उतनी ही हिंसा से भरा हुआ है, वहीं दूसरी ओर महात्मा गाँधी (प्रभु : 1964) 'हरिजन' की विपन्नता का कारण समाज द्वारा निर्मित अन्यायपूर्ण सामाजिक संरचना में पाते हैं। शोषक तथा शोषित दोनों ही वर्गों का व्यक्तित्व दो भागों में बँटा हुआ है। जिसमें कुछ हद तक मुख्य विभाजक 'ज्ञान' तथा 'तर्क' बनते हैं।

इलैया (2003 : xii) महत्वपूर्ण रूप से स्वीकार करते है कि यह विभाजन मूलत: 'उत्पादक' तथा 'गैर-उत्पादक' जातियों का है। उनके अनुसार महात्मा फूले शायद

पहले ऐसे आधुनिक विचारक थे, जिन्होंने सभी 'उत्पादक जातियों' के बारे में लिखा है। उन्होंने उनको 'शूद्र' और 'अतिशूद्र' के रूप में पारिभाषित किया है। (वही, पृ. xii)

ब्राह्मणवादी सोच 'शूद्र' का प्रयोग 'अपमानजनक' भाव से करती है। यह सोच उनके आत्म-सम्मान तथा राजनैतिक सजगता को व्यक्त नहीं कर पाती है। इलैया कहते हैं कि जब तक अम्बेडकर ने 'इन जातियों' के बारे में लिखना शुरू किया, तब उस समय भारत की ब्रिटिश सरकार सभी 'कामगार जातियों' का उल्लेख करने के लिए 'पददलित जातियाँ' शब्द का प्रयोग कर रही थी। दलितों के संदर्भ में तथा उनके अधिकारों के लिए डॉ. अम्बेडकर के विचार आमूल परिवर्तनकारी थे। उनकी दृढ़ मान्यता रही कि दलितों को समाज में बराबरी का स्थान 'शिक्षित बनने, संगठित होने, संघर्ष करने' से ही प्राप्त हो सकता था।

डॉ. अम्बेडकर ने 18 अक्टूबर 1925 में मुम्बई की एक दलित सभा में दिये गए अपने वक्तव्य में इस बात को जोरदार तरीके से उठाया कि –

> *''... मैं आपको सलाह देता हूँ कि जो थोड़ी बहुत राजनीतिक शक्ति आपके हाथों में आ रही है आप उसका लाभ उठाएँ, यदि आप ऐसा नहीं करते तो आपके दु:खों का अंत नहीं हो पाएगा और दासता जिसके विरुद्ध आप संघर्ष कर रहे हैं, आपको पुन: दबा सकती है।*
>
> (सिंह : 2002 : 155)

इन अर्थों में दलितों को गतिशील (सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक शैक्षिक) बनाने में महत्वपूर्ण आयाम के रूप में 'सजगता' महत्वपूर्ण रूप से उभरती है। न केवल अतीत बल्कि वर्तमान में भी सामाजिक कलंक व अन्य बहुत सी बुराइयाँ जो जाति पर आधारित हैं, ये 'दलित' को पारिभाषित करती थीं और बहुत हद तक करती हैं, चाहे दलित सामाजिक वर्ग में कितना ही ऊपर चला जाए या अपना धर्म परिवर्तित कर ले, यथास्थिति ही रहती है।

अत: आवश्यकता 'दलित' शब्द को समझने की है न कि उसे पारिभाषित करने की। लोकप्रिय और अकादमिक दोनों अर्थों में 'दलित' पद हरिजन, अछूत, दमित, अनुसूचित जाति और अन्य अप्रचलित व्याख्यात्मक पद के रूप में क्रियाशील रहा है।

यहाँ यह तर्क दिया जाता है कि 'दलित' शब्द जातीय-अस्मिता के रूप में प्रयुक्त

नहीं होता है; बल्कि सामाजिक चतुर्वर्णीय व्यवस्था के बाहर वर्ग के रूप में प्रयुक्त होता है। दलित एक जाति नहीं वरन् 'जाति के विरोध में व्यक्तिगतता' का भाव है अर्थात् सभी अनुसूचित जातियों को 'दलित' नहीं माना जा सकता, बल्कि केवल उन्हीं सब जातियों को जो 'अस्पृश्य' होने की पीड़ा भोग रही हैं, 'दलित' समझा जाना चाहिए। दलित एक व्यक्तिवादिता है, जो 'जाति' को बहिष्कृत करते हुए किसी के द्वारा चेतनावस्था/सजगता में अपनाया जाता है।

दरिदा (1976)[3] के शब्दों में, यह (डेफअरे) 'अस्वीकृतिकरण या बहिष्करण की अभिव्यक्ति' है। जबकि 'दलित' शब्द, अपने विकृत रूप में अनुसूचित जाति, हरिजन और दमित वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है। गैर-दलित वर्ग के द्वारा 'दलित' शब्द जाति का द्योतक है, जबकि दलित-वर्ग इसे 'जाति के बहिष्करण' के रूप में प्रयुक्त करता है। दूसरे शब्दों में दलित के अर्थ को जातीय-अनुष्ठान के अन्तर्गत सांगठनिक-स्वरूप में समझा जा सकता है।

केवल 'अछूत' ही दलित-व्यक्तिवादिता का दावा कर सकता है। परन्तु साथ ही उसे इस बात का अहसास होना चाहिए कि यह व्यक्तिवादिता परिवर्तन योग्य है। यदि यह अस्मिता एक 'नियमनिष्ठ-अस्मिता' में परिवर्तित हो जाती है, तो यह जाति-व्यवस्था की ही तरह एक विकृत स्वरूप धारण कर लेगी।

यद्यपि 'दलित' अपने सामाजिक-राजनैतिक तथा संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में एक सुस्पष्ट परिभाषित 'श्रेणीयन' की अधिकृत स्वीकार्यता पा चुका है तथापि इस समुदाय को लगातार हाशिए पर धकेलने से बचाने के उपक्रम में कोई महत्वपूर्ण एवं सार्थक परिवर्तन अपेक्षाकृत आनुपातिक रूप से परिलक्षित नहीं हो पा रहा है। आधुनिकता के इस आइने में 'दलित' पीछे छूटता नजर आता है। इस पर कोई दो मत नहीं है कि वैश्वीकरण के इस युग में दुनिया के तमाम हिस्सों या समाजों में गतिशीलता आई है लेकिन बहस का मुद्दा यहाँ यह है कि इस 'गतिशीलता' के मायने क्या हैं? यह गतिशीलता किसके सापेक्ष है? गतिशीलता की दर या गति क्या है? और इसमें कौन-कौन से कारक महत्वपूर्ण भूमिका में हैं? कोई समुदाय गतिशील है, यह कह देना भर पर्याप्त नहीं है, बल्कि भूमंडलीकरण के इस दौर में वस्तुगत सापेक्षिकता तथा

[3] दारिदा, जे. (1976), 'ओस-ग्रामॉटेलोजी, 'जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय प्रैस, बल्टीमोर

तुलनात्मकता महत्वपूर्ण रूप से 'विमर्श' का हिस्सा बनी है।

शिक्षा के आधार पर अन्य सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक चरित्र को समझना तथा उन्हें व्याख्यायित करना किसी भी 'परिघटना' या 'समाज' की गतिशीलता की प्रवृत्ति के केवल एक आयाम को ही उद्घाटित कर सकता है। दलितों पर होने वाले अत्याचार (भारतीय संदर्भ में), नस्ल आधारित भेदभाव, वर्ग विभाजन आदि विसंगतियाँ वर्तमान युग में भी पीछा कर रही हैं। इन हालातों में शिक्षा के जरिए 'हालातों' को समझना स्वत: ही महत्वपूर्ण होता है क्योंकि शिक्षा केन्द्र/संस्थान भी इन विसंगतियों से अछूते नहीं रह पाए हैं और न ही रह सकते हैं।

राजस्थान में एक अध्ययन[4] के दौरान मुझे देखने को मिला कि स्कूल में बच्चों को पढ़ाने के लिए महज इसलिए रोक दिया गया कि वो 'अस्पृश्य' समुदाय से हैं। 40 वर्ष पार कर चुकी महिलाएँ आज भी, इतनी भयाक्रांत हैं कि वे मंदिरों, चौपाल, सवर्णों के घर के सामने से चप्पल पहनकर नहीं गुजर सकतीं। पानी के लिए आज भी इस समुदाय के लोगों को सार्वजनिक हैण्डपम्प, कुँओं, आदि पर घंटों इंतजार करना होता है, क्योंकि 'प्रभु जाति' के हितों की साधक यह सामाजिक व्यवस्था उनमें और स्वयं के बीच एक बहुत बड़ा फर्क देखती है। गाँव में होने वाले सार्वजनिक-भोज में ये तथाकथित 'अस्पृश्य', 'जूठन' खाने को विवश किये जाते हैं। घरों में इनके लिए पानी या चाय आदि के पात्र अलग रखने को न केवल गाँव में बल्कि शहरों में भी आम बात माना जाता रहा है। वैकल्पिक विद्यालयों को लेकर किए गए अध्ययन के दौरान स्कूली व्यवस्था में, देखने को मिला कि शिक्षक सजा के तौर पर बच्चों को झाड़ू लगाने, दरी-पट्टी उठाने, कक्षा या स्कूल (ज्यादा 'संगीन' अपराध होने पर) की सफाई जैसे कार्य करवाते हैं। सजा देने के तौर-तरीकों के पीछे उनकी समझ को 'सामाजिक विमर्श' में देखने की आवश्यकता है।[5]

यह तमाम घटनाएँ इस बात के चिंतन के लिए विवश करती हैं कि आखिर समाज-व्यवस्था के भीतर ऐसा क्या है और क्यों है कि संवैधानिक-व्यवस्था होने के

[4] एन इवॉल्यूशन ऑफ इजीएस/एएस अन्डर डीपीइपी, शिक्षा विभाग मा.सं.वि.मं., भारत सरकार, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003-2004

[5] शर्मा, संजय 'वैकल्पिक पाठशाला कार्यक्रम में शिक्षा शास्त्रीय प्रक्रियाओं का विश्लेषण' परिप्रेक्ष्य अगस्त 2005,

बाद भी विषमता-विभेद विद्यमान है। इसमें शिक्षा की भूमिका महत्त्वपूर्ण बनती है या नहीं? समाज में व्याप्त यह विषमता विभेद किस तरह से किसी समुदाय विशेष में होने वाले संचरण या गतिशीलता के स्वरूप, प्रकार, प्रकृति और आयाम आदि को प्रभावित करता है और उसे अन्य समुदायों के समक्ष किस तरह से संचरणीय बनाता है तथा इनमें 'शिक्षा' की क्या भूमिका है?

जाति, गतिशीलता एवं शिक्षा : अन्तर्सम्बन्धों की एक समझ

भारत जैसे पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था वाले समाज में जाति को लेकर कोई एकरूप समझ बनाना एक दुरूह कार्य है। इसकी दुरूहता न केवल इसलिए है कि यह समाज जटिल पदानुक्रमिक संरचित है, बल्कि इसलिए भी है कि यह अपने स्वरूप विन्यास तथा प्रतिरूपों में सामाजिक-सांस्कृतिक-ऐतिहासिक-भौगोलिक अन्तर्सम्बन्धों में गहनतम रूप से विषमता विभेदिता मूलक है। भारतीय पारम्परिक समाज जो कि मूलत: ब्राह्मणीय समाज-संरचना व्यवस्था पर आधारित है, की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी सोपानबद्ध, जटिल संगठनात्मक जाति व्यवस्था है। अनेक समाज विचारकों, अध्येताओं ने इसके उद्भव, विकास और प्रसार को समझने-समझाने का प्रयास किया है। जाति पर आधारित अस्मिताएं समकालीन भारतीय समाजिकी में एक प्रबल शक्ति के रूप में उभर कर आई है। इसमें व्याप्त असमानताओं तथा शोषण के निराकरण की मांगों ने जाति के सारतत्व तथा गतिकी के प्रश्न पर 'एक चिंतन' प्रक्रिया को जन्म दिया है। भारत के लोग जातीय मानसिकता से बुरी तरह ग्रस्त हैं (बेतेई, 1991)।[6]

ओ' मेले (1941)[7] के अनुसार *ब्रिटिश काल में अंग्रेजों द्वारा शुरू की गई शिक्षा से विभिन्न नये मूल्य, जैसे– संवैधानिक समानता, विचारधारा की स्वतंत्रता आदि विकसित हुए। इन सब मूल्यों ने दलितों हेतु शिक्षा व उनकी सामाजिक गतिशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।*

[6] बेतेई, अन्द्रे (1991), 'द रिप्रोडक्शन आफ इनइक्वालिटी : आक्यूपेशन, कास्ट एंड फैमिली फ्रॉम कन्ट्रीव्यूशन टू इंडिया सोशियोलॉजी, न्यू सिरीज, वाल्यूम 25 सीटेड फ्रॉम के.एल. शर्मा (सं.), 'सोशल इनइक्वालिटी इन इंडिया', नई दिल्ली 1955, पृ.115-47

[7] ओ' मेले. एल.एस.एस., (1974), 'इंडियन कास्ट कस्टम' दिल्ली विकास पब्लिकेशन

लिंच (1969)[8] इस बात को स्वीकार करते हैं कि *सामाजिक गतिशीलता में आधुनिक शिक्षा का कार्यात्मक महत्व सर्वाधिक है।* सुमा चिटनिस (1972)[9] के अनुसार *अनुसूचित जाति के बच्चों में निम्न निष्पादन व अपव्यय के लिए उनकी निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि उत्तरदायी है।* अनुसूचित जाति के लिए विभेदता-निवारण नीति का विश्लेषण करते हुए उन्होंने स्कूल नामांकन व साक्षरता पर प्रभावों की जाँच की। उन्होंने दर्शाया कि *व्यावसायिक व तकनीकी पाठ्यक्रमों में इनका नामांकन न्यून है, साथ ही उनका नामांकन निम्नस्तरीय संस्थानों में है। इसके अलावा लिंगवार व अन्तर्जातीय असमानताएं निष्पादन के क्षेत्रों में देखने को मिलती हैं।*

एस.एम. दुबे (1975)[10] ने अपने अध्ययन में पाया कि सामाजिक गतिशीलता व स्तरीकरण व्यवस्था एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। गतिशीलता आधुनिक शिक्षा से गहन रूप से संबन्धित हैं। उनका मानना है कि *आधुनिक विश्वविद्यालयी शिक्षा के परिणामस्वरूप ही सामाजिक गतिशीलता आयी है, क्योंकि ब्रिटिश सरकार पढ़े-लिखे लोगों को बहुत से अवसर व सरकारी नौकरियाँ उपलब्ध करवाती थी।* सोरन सिंह (1987)[11] ने जयपुर में किए अपने अध्ययन में, अनुसूचित जाति में सामाजिक परिवर्तन के एक नये आयाम की बात की। अध्ययन का मुख्य जोर सामाजिक परिवर्तन की सामाजिक संरचना (जिसमें व्यावसायिक, आर्थिक स्थिति, राजनैतिक भागीदारी, स्वास्थ्य व शिक्षा शामिल है।) पर था। उनके अनुसार *उर्ध्वाधर गतिशीलता का मुख्य कारण शिक्षा व बालकों को मिलने वाला वज़ीफा रहा।*

चौधरी (1987)[12] के अनुसार इन समुदायों में शिक्षा के स्तर में सुधार हुआ है और ये नये व्यवसायों को अपना रहे हैं, अवसरों का बेहतर उपयोग करके सरकारी क्षेत्रों में

[8] लिंच, ओ.एम., (1969), ''द पॉलिटिक्स ऑफ अनटचेबिलिटी: सोशल मोबिलिटी एंड सोशल चेंज इन ए सिटी ऑफ इंडिया', न्यू यॉर्के कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.

[9] चिटनिस, एस., (1972): 'एजुकेशन फार इक्वलिटी: केस ऑफ शेड्यूल कास्ट' इ.पी.डब्ल्यू, 31-33

[10] दूबे, एस.एम., (1975): 'सोशल मोबिलिटी विद रिफरेंस टू माडर्न एजुकेशन इन गोरखपुर (उ.प्र.) अनपब्लिश्ड रिसर्च.

[11] सिंह, एस, (1987), 'शेड्यूल कास्ट इन इंडिया: डायमेंसन ऑफ सोशल चेंज' ज्ञान पब्लिशिंग, नई दिल्ली

[12] चौधरी के., (1988): 'द पॉलिसी ऑफ रिजर्वेशन: नीड टू कंटीन्यू एंड ट्रांसेंड' सोशल एक्शन, अप्रैल-जून, 17-24

जा रहे हैं तथा राजनैतिक रूप से ज्यादा जागृत व सक्रिय हो रहे हैं। चानना (1993)[13] ने अनुसूचित जाति व जनजाति, अल्पसंख्यकों तथा महिलाओं में उच्च शिक्षा की स्थिति के सम्बन्ध में किए गए अध्ययन तथा शिक्षा-नीतियों के पुनःअवलोकन के दौरान उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में पाया कि *शिक्षायी कार्यक्रम, शिक्षा-नीतियों और उनको व्यवहार में लाने के मध्य के अंतराल को कम करने में असपफल रहे हैं।*

झा एवं झींगरन (2002)[14] ने दलित बच्चों की विद्यालयी शिक्षा पर किए गए अपने अध्ययन में यह माना कि *'शिक्षा' एक लम्बी प्रक्रिया है और गरीब परिवारों के लिए 'लम्बी अवधि' तक बच्चों को स्कूल भेजना संभव नहीं होता, सामाजिक और आर्थिक रूप से विपन्न दलित परिवारों के लिए यह और भी मुश्किल है।*

कामगारों, अछूतों पर किए गये अपने अध्ययन में सुषमा धवन (1983)[15] ने दिल्ली में बसे रैगर समुदाय की सामाजिक गतिशीलता एवं सामाजिक परिवर्तन को अपना शोध विषय बनाया और पाया कि *चर्मकार समाज ने अपने पारंपरिक विश्वासों, मान्यताओं, मूल्यों आदि को बिना छोड़े, उच्च जाति समूहों के विश्वासों, पद्धतियों, परम्पराओं तथा उनके उपनामों को भी अपना लिया है। इसके जरिये वे सामाजिक गतिशीलता तथा ऊँची हैसियत अर्थात् सामाजिक स्वीकार्यता प्राप्त करना चाहते हैं।* नीता कुमार (2002)[16] ने, रेशम उद्योग में संलग्न बनारस के मुस्लिम बुनकरों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में कौशल प्रधान बुनकर समुदाय की सामाजिक गतिकी के साथ-साथ, बुनकरों के शैक्षिक कौशल का अध्ययन शिक्षाशास्त्रीय एवं पाठ्यचर्या के

---

[13] चानना, के. (1993) 'एसोसिंग हायर एजुकेशन: द डायलेमा ऑफ स्कूलिंग वूमेन, मायनरिटीज़ एस सीज़, एस टीज़ इन कंटेम्पोररी इंडिया 'हायर एजुकेशन' (26:1)

[14] झा एवं सिंगरन (2002): 'द स्कूलिंग ऑफ दलित चिल्ड्रेन: ए पंडोरास बॉक्स इन एलिमेंटरी एजुकेशन फॉर द यूअरेस्ट एंड द डिप्राइज्ड ग्रुप्स : द रिअल चैलेंज ऑफ यनिवर्सलाइजेशन' सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च, नई दिल्ली

[15] धवन, एस. (1983): 'सोशल मोबिलिटी एंड सोशल चेंज:ए स्टडी बेस्ड आन रैगाइस ऑफ देलही (अनपब्लिश्ड एम.फिल. डिजर्टेशन) डिपार्टमेंट ऑफ एन्थ्रोपोलॉजी, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, नई दिल्ली

[16] सिंह, एस, (1987), 'शेड्यूल कास्ट इन इंडिया: डायमेंसन ऑफ सोशल चेंज' ज्ञान पब्लिशिंग, नई दिल्ली

सन्दर्भ में किया गया है। रामशरण जोशी (1996)[17] ने अपनी पुस्तक 'आदिवासी समाज और शिक्षा' में विस्थापित आदिवासियों की समस्याओं को स्वर देने का प्रयास किया है। ये आदिवासी वे हैं जिन्हें औद्योगिकीकरण ने भूमि से विस्थापित कर भूमिहीन श्रमिक, सर्वहारा, प्रवासी बना दिया है। विस्थापन के कारण, आदिवासियों में बढ़ती अपराध प्रवृत्ति समस्या को गहरा देती है। जोशी अपने अध्ययन में पाते हैं कि *अपरंपरागत तरीकों' से दी जाने वाली 'शिक्षा' आदिवासियों की समस्याओं को हल कर सकती है साथ ही इनकी प्रस्थिति को भी सुधार सकती है।* जोशी का यह विचार एक हद तक पॉलो फेयरे के उत्पीड़ितों के शिक्षा शास्त्र तथा उसके प्रमुख औजार समीक्षाई चेतना का ही अग्रसरण है। दूबे और माथुर (1972)[18] इस बात को प्रमुख रूप से इंगित करते है कि *अनुसूचित जातियों को मिलने वाली सरकारी सुविधाएं या उनका वितरण प्राय: असमान ही है।*

मसला केवल सुविधाएं प्राप्त करने का नहीं है, तथ्य यह है कि उन सुविधाओं तक उनकी पहुंच कितनी है। अतीत पर दृष्टि डाले तो पाते हैं कि 1962 में मैसूर के पूर्व-विश्व विद्यालयी पाठ्यक्रम में नामांकित 40,000 बच्चों में से 961 छात्र/छात्रा अनुसूचित जाति से थे।[19] यह सब आंकड़ें दिखाते हैं कि ऐतिहासिक रूप से इस समाज विशेष की कम उपलब्धिता के लिए इनका सामाजिक-आर्थिक परिवेश गहनतम रूप से जिम्मेदार है।[20] इतना ही नही जाति की बाधा इस रूप से मुखर होती है कि आधुनिक शिक्षा में दीक्षित युवा भी इससे मुक्त नही हो पाते है।[21] छुआछूत की मानसिकता इतनी गहरा जाती है कि इसकी पीड़ा भोग रहे समाज के सदस्य अपने लिए

---

[17] जोशी, आर.एस., (1996): 'आदिवासी समाज और शिक्षा (लिव्यांतरण अरूण प्रकाश), ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली

[18] दुबे एस.एन. और उषा माथुर (1972). 'वेलफेयर प्रोग्राम फार एस. सीज़: कंटेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन' इ.पी.डब्ल्यू, वा. VII, नं. 4, जनवरी 22, 165-76

[19] नीलसन, जे.पी. (1972). 'द इम्पैक्ट ऑफ एजुकेशन आन द स्ट्रेटीफिकेशन ऑफ इंडिया,' सोशल रिसर्च (ज.), 15(2), 51-52

[20] वही

[21] फेलिस, एस.एन. (1977). 'स्टैट्स ऑफ हरिजन स्टूडेंट इन कॉलेज' सोशल वर्क (ज.), वा. 38ण अप्रैल 15-26. जी.जी. वानखेड़े (1999), 'सोशल माविलिटी एंड स्ड्यूल कास्ट: रिसिडिंग हॉरिजन' रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 27-28 में उद्धृत

अलग से स्कूलों, शिक्षण संस्थाओं की मांग करते है।[22] शुक्ला (1969)[23] का मत है कि *जब तक हैसियत को भूमि स्वामित्व, आय इत्यादि के आधार पर मापा जाएगा, तब तक न तो असानी से शिक्षा का व्यापक प्रसार हो पाएगा और न ही यह परिवर्तन का एक प्रभावी साधन बनेगी।* अनुसूचित जातियों की प्रगति, विकास आदि को लेकर हुए विभिन्न अध्ययनों के सर्वेक्षण से यह बात स्पष्ट होती है कि ''इस समुदाय की उन्नति तथा विकास को तुलनात्मक रूप से संतोषजनक नही माना जा सकता''[24] संदर्भ भले ही शिक्षा, रोजगार या सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक आयामों का हो, समाज वर्ग घोषित विकास की रेखा से अभी दूर प्रतीत होता है। उच्च शिक्षा का महंगा तथा खास तरह के 'पूर्वाग्रहो' से ग्रसित स्वरूप इन्हें हाशिए पर धकेलता है। आर्थिक रूप से पिछड़े तथा सामाजिक रूप से बहिष्कृत होने की परिभाषा पर पहुँच चुका यह समाज जाति एवं बहिष्करण रूपी एक मनोवैज्ञानिक 'स्टीग्मा' से गुजर रहा है। जिसके कारण यह लगातार पिछड़ता जा रहा है। अहमद (1978)[25] अपने अध्ययन में पाती हैं कि आर्थिकता, इन जातियों के लिए शिक्षा को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यद्यपि सूक्ष्म और वृहद स्तर पर अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण, असरदार कारक के रूप में उभरी है। फिर भी अन्य कारक उतने ही महत्वपूर्ण स्थान पर हैं।[26]

जाति व्यवस्था में गतिशीलता एवं परिवर्तन

जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक गतिशीलता का प्रश्न एक महत्त्वूपर्ण प्रश्न है। जन्म से निर्धारित सामाजिक हैसियत में दक्षता, योग्यता और उपलब्धि के कारण

---

[22] चौहान, बी.आर. एंड जी. नारायण (1976). 'प्रॉब्लम ऑफ एजुकेशन एमंग एस.सी. स्टूडेंट्स इन उ. प्र., सोशल चेंज, वा. 6 नं. 1 एवं 2, 13-17

[23] शुक्ला, एस. (1969), 'स्ट्रेटजी फार सोशल चेंज: ए रिजवाइंडर' इ.पी. डब्ल्यू. वा. IV, सं. 20, मई 27, 853-55

[24] वानखेड़े सी.जी., (1999), 'सोशल माबिलिटी एंड सेड्यूल कास्ट: रिसिडिंग हॉरिजन' रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 27-28

[25] अहमद, के. (1978), 'टूवार्ड्स इक्वलिटी: कंसेक्वेंस ऑफ प्रोटेक्टिव डिस्क्रीमिनेशन' इ.पी. डब्ल्यू, वा. XIII सं. 2, जनवरी 14, 69-72

[26] वहीं

परिवर्तन आता है। तथाकथित 'उच्च वर्ण' तथा आज की संवैधानिक शब्दावली में वर्णित अनुसूचित जातियों/जनजातियों की सामाजिक स्थिति प्राय: कठोरता के साथ जन्म से ही निर्धारित होती थी। इसी के बरक्स क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण की स्थिति में परिवर्तन भी होता रहता था। ऐतिहासिक दृष्टान्तों, अध्ययनों से यह बात स्पष्ट होती है कि अपनी क्षमता और शक्ति के आधार पर अनेक जनजातियों, वैश्य तथा क्षत्रियों ने सामाजिक हैसियत में बदलाव किया। अभिप्राय यह है कि जाति व्यवस्था जड़ या बेजान नहीं है। दो स्तर पर जातियों के परिवर्तन को देखा जा सकता है। एक परिवर्तन तो गतिशीलता है जिसका अर्थ एक व्यक्ति के जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव से है। जब जातियों की गतिशीलता को देखते हैं तो इससे तात्पर्य एक जाति की सोपान में जो प्रस्थिति थी, उसमें बदलाव आया है। यह गतिशीलता का द्योतक है। जातियों को देखने का दूसरा तरीका परिवर्तन का है। इसके अनुसार जाति अपनी पहचान तो बनाये रखती है, लेकिन इसके परम्परागत कार्यों में अंतर आ जाता है। संरचना और संस्कृति, दोनों ही स्तर पर जातियों में बदलाव आ जाता है। यह बदलाव प्राय: मूल्यों से जुड़ा होता है। जो 'पवित्र और अपवित्र' की परम्परागत विचारधारा को प्रभावित करता है। वर्तमान में जातियों की परम्परागत सोपानिक व्यवस्था को गतिशीलता एवं परिवर्तन ने कमजोर किया है। दलितों का मंदिरों में प्रवेश, उच्च पदों पर आसीन होना, समाज में भागीदारी, समाज का नेतृत्व करना आदि कुछ बदलाव के उदाहरण हैं। उनका दृढ़ मत है कि आने वाला समय 'भारत में विप्लव' का समय होगा। योगेन्द्र सिंह (1977)[27] के अनुसार जाति के संरचनात्मक पहलू आज परम्परागत नही है। अन्तर्जातीय विवाह, व्यवसायों में बदलाव इसके उदाहरण हैं। जाति व्यवस्था पर जाति से बाहर के कारक जैसे प्रजातंत्रीकरण, औद्योगिकीकरण, भूमि सुधार आदि लगातार प्रभाव डाल रहे हैं। इसके साथ ही जातियों में लगातार आंतरिक बदलाव भी हो रहा है। स्वयं जाति चाहती है कि सोपानिक व्यवस्था में वह अपने स्थान को बदले। योगेन्द्र सिंह ने आंतरिक गतिशीलता के लिए उत्तरदायी कारकों को ओरथोजेनेटिक कारक कहा है। यह कारक जो धर्मनिरपेक्षता, संस्कृतिकरण, पाश्चात्यकरण आदि से ही उत्पन्न होते हैं और उसे प्रभावित करते हैं। जातियों में पदानुक्रम का आधार 'पवित्र-अपवित्र' विचारधारा है। वर्तमान में तथाकथित

[27] सिंह, वाई. (1977): 'मॉडर्नाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन: ए सिस्टमैटिक स्टडी ऑफ सोशल चेंज', थाम्पसन प्रेस, नई दिल्ली

'अपवित्र' जातियाँ, जाति-व्यवस्था में ऊपर उठने के लिए 'पवित्र' जातियों के समान सांस्कृतिक व्यवहार अपना कर, गतिशीलता की ओर अग्रसर हैं। निम्न जातियों द्वारा मांसाहार निषेध, मद्यपान निषेध, धर्मविधि में ब्राह्मणों का अनुसरण आदि इसके उदाहरण हैं।

योगेन्द्र सिंह के अनुसार *संस्कृतिकरण एक अद्‌भुत ऐतिहासिक अभिव्यक्ति है जिसमें निम्न जातियाँ उच्च स्थान / प्रस्थिति पाने के लिए सांस्कृतिक अनुकूल करती हैं।* भारतीय जाति-व्यवस्था में इस प्रकार की गतिशीलता एवं परिवर्तन, जाति-व्यवस्था के बदलाव के लिए पर्याप्त नहीं हैं। *राव (1985)*[28] *का मानना है कि आज भी हरिजन एक शोषित वर्ग है। वे उस उत्पादन व्यवस्था के भागीदार हैं जिसका नियंत्रण ऊँची जातियाँ और उच्च वर्ग के हाथों में है।*

आज भी दलित गांव या मुख्य आबादी से बाहर रह रहे हैं। सवर्णों के साथ बैठकर चाय पीना, एक साथ काम करना, साथ रहना, आदि ऊपरी तौर पर आया बदलाव है असल बदलाव 'मानसिकता' का है जो एक दलित को 'दलित' होने का हर पल अहसास कराती है। देश के शीर्षासन पर 'दलित' को बैठा देने मात्र से ही सम्पूर्ण दलितों की मुख्यधारा में भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो जाती है। भारत सरकार के अधिनियम 1935, में पहली बार तथाकथित निम्न जातियों को 'अस्पृश्य' श्रेणी से बाहर निकलने का आधिकारिक प्रयास करते हुए इन्हें अनुसूचित जातियों की संज्ञा दी गई।[29] आजादी के बाद तीव्रता से इन जातियों के विकास के लिए संवैधानिक प्रावधान किए गए। सरकार के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के तहत संवैधानिक अनुच्छेद-46 में स्पष्ट कहा गया है कि *राज्य जिसमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृत्ति हो।* संविधान में विशेष सुरक्षा देने के पीछे, निम्न तथा पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाना उद्‌देश्य था।

सामाजिक गतिशीलता

सामाजिक गतिशीलता का संप्रत्यय समाजशास्त्र में असमानता को जाँचने के संदर्भ में

---

[28] राव, एम.एस.ए. (1985): 'एजुकेशन स्ट्रेटीफिकेशन एंड सोशल माबिलिटी कुमार, के. और शुक्ला, एस. (एड.) सोशियोलॉजिकल पर्सपेक्टिव इन एजुकेशन, नई दिल्ली

[29] गवर्नमेंट ऑफ इंडिया शेड्‌यूल कास्ट ऑर्डर, 1936 ब्रिटिश गवर्नमेंट, इंडिया

प्रयुक्त होता है। सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक पदानुक्रम में व्यक्ति के गतिशील होने से है।

गतिशीलता का अभिप्राय बदलाव से है तथा सामाजिक गतिशीलता का अभिप्राय एक सामाजिक प्रस्थिति से दूसरी सामाजिक प्रस्थिति की तरफ हुआ बदलाव अथवा परिवर्तन है। अन्य शब्दों में किसी समाज की सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था में, सामान्यत: व्यक्तियों और कभी-कभी किसी सम्पूर्ण समूह की भिन्न पद-प्रस्थितियों के बीच होने वाले संक्रमण/परिवर्तन को सामाजिक गतिशीलता कहते हैं। ये सामाजिक प्रस्थितियाँ आर्थिक, व्यावसायिक, राजनैतिक, आय इत्यादि संदर्भों से संबंधित हैं। अत: जब सामाजिक गतिशीलता अस्तित्व में आती है तो सामाजिक क्षेत्र के अन्तर्गत बदलाव उत्पन्न होता है।[30]

सामाजिक स्तरीकरण धन, प्रतिष्ठा, शक्ति, व्यवसाय, आय इत्यादि आधार पर व्यक्तियों अथवा समूहों में पाया जाने वाला क्रमविन्यास है। स्तरीकरण, वस्तुओं, सेवाओं, शक्ति एवं प्रतिष्ठा के असमान वितरण से उत्पन्न असमानता है; जो समाजों में पाई जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप अधिकारों एवं कर्त्तव्यों में उत्पन्न असमानता भी स्तरीकरण का भाग बन जाती है। वे व्यक्ति जिनमें उच्चतर स्थान की ओर अथवा निचले स्तर की ओर गतिशीलता सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में पाई जाती है, वे सामाजिक संस्तरण में भी गतिशीलता अथवा सामाजिक क्रमविन्यास में भी परिवर्तन का अनुभव करते हैं। उन्हें धन, सम्मान, शक्ति एवं प्रतिष्ठा कम अथवा अधिक प्राप्त होती है जिसके परिणाम स्वरूप वे नवीन सामाजिक वर्ग की सदस्यता प्राप्त करते हैं।[31]

20वीं सदी के मध्याह्न के आसपास सामाजिक गतिशीलता संबंधी शोध अध्ययनों के क्षेत्र में दो प्रमुख विरोधी धाराएँ उभर कर आईं। एक धारा जिसके अनुसार सामाजिक पदक्रम के संदर्भ में गतिशीलता का विवेचन किया गया। इसके समर्थक विद्वानों ने आय, शैक्षिक योग्यता और सामाजिक आर्थिक योग्यता के आधार पर व्यक्तियों का कोटि विभाजन किया। दूसरी धारा के अनुसार गतिशीलता की वर्ग-संरचना के संदर्भ में विवेचना करते हुए विद्यमान श्रम बाजारों और उत्पादन इकाइयों द्वारा परिभाषित संबंधों

[30] सोरोकीन, पी.ए. (1959), उद्‌धृत

[31] रावत, हरिकृष्ण (2004). समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स।

के माध्यम से सामाजिक स्थितियों का जायज़ा लिया गया। अमेरिका में सामाजिक पदक्रम के आधार पर गतिशीलता अध्ययनों की प्रस्थिति जन्मे अर्जन परम्परा का सूत्रपात हुआ। पीटर ब्लॉ एवं ओरिश डंकन[32] का 'द अमेरिकन ऑक्यूपेशनल स्ट्रक्चर (1967)' इसी परिप्रेक्ष्य का उदाहरण है। सामाजिक गतिशीलता किसी भी समाज के खुलेपन तथा धारा प्रवाहितता की दर की सूचना हेतु प्रयोग में लाई जाती है।

शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता

आधुनिक समाज शिक्षा को एक अहम सामाजिक संसाधन और समता के लक्ष्य को पाने का साधन मानता है। शिक्षा को विभिन्न प्रकार से किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उपर उठाने का साधन माना जाता है। इसे उस ज्ञान, कौशल, जीवन मूल्यों और दृष्टिकोण को पाने का उपाय समझा जाता है, जो किसी व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक वातावरण में उसके सचमुच मानवीय जीवन जीने के लिए आवश्यक है। दूसरे शब्दों में शिक्षा को एक वांछित कोटि के जीवन हेतु एक बुनियादी इंसानी जरूरत समझा जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)[33] के अनुसार '... मनुष्य एक बेशकीमती संपदा है, अमूल्य संसाधन है। जरूरत इस बात की है कि उसकी परवरिश गतिशील एवं संवेदनशील हो और सावधानी से की जाए।

शिक्षा की भूमिका पर चर्चा करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में ही निम्न बातों को स्पष्ट किया गया है। हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में 'सबके लिए शिक्षा' हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है। शिक्षा सुसंस्कृत बनाने का माध्यम है। यह हमारी संवेदनशीलता और दृष्टि को प्रखर करती है, जिससे राष्ट्रीय एकता पनपती है, वैज्ञानिक तरीके के अमल की संभावना बढ़ती है और चिन्तन से स्वतंत्रता आती है। शिक्षा के द्वारा ही आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों के लिए जरूरत के अनुसार जनशक्ति का विकास होता है। कुल मिलाकर यह कहना होगा कि शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण का अनुपम साधन है।

---

[32] लाउ, पी.एम. एवं डंकन, ओ.डी. (1967) द अमेरिकन ऑक्यूपेशनल स्ट्रक्चर, न्यूयार्क, विले.

[33] गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नेशनल पॉलिसी आन एजुकेशन, 1986 मिनिस्टरी ऑफ एच.आर.डी. नई दिल्ली

एक बुनियादी इंसानी जरूरत होने के अलावा शिक्षा और ख़ासकर व्यावसायिक, तकनीकी और वृत्तिक शिक्षा रोजगार पाने के लिए भी आवश्यक मानी जाती है। मानवपूँजी के सिद्धान्त (करबिल और हाल्सी 1977, तिलक 1994) के अनुसार 'शिक्षा उपभोग वस्तु नहीं', प्रतिपफल देने वाली निवेश है। किसी व्यवसाय या ऊँचे व्यवसाय में लगने का मतलब विभिन्न स्तरों वाली सामाजिक स्थिति पाना है। इस तरह शिक्षा सामाजिक गतिशीलता और उस हद तक समता की स्थापना का साधन बन जाती है।

शैक्षिक अवसरों की समानता के सन्दर्भ में शिक्षा से समताकारी बनने की आशा की जाती है। शैक्षिक अवसरों की समानता का मतलब है कि व्यक्तियों को शिक्षा एक समान सुलभ है। और व्यवहारिक ढंग से कहें तो किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार या स्तर विशेष की शिक्षा से वंचित नहीं रखा जाता और मात्र अपने निजी विशेषणों या जन्मजात पहचानों के कारण वह शैक्षिक उपलब्धि में बाधा महसूस नहीं करता। शैक्षिक अवसरों की समानता समतावादी विचारधारा के उद्देश्यों में से एक है। फिर भी शैक्षिक अवसरों की असमानता पूरी दुनिया में पाई जाती है। और इससे निपटने के लिए जोरदार कोशिशें जारी हैं।[34]

नई शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है – 'समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए सभी को शिक्षा का समान अवसर उपलब्ध करवाना ही पर्याप्त नहीं होगा, ऐसी व्यवस्था होना भी जरूरी है जिसमें सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिले।... वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुंठाएं दूर हों।'

द्रेज व सेन (2003)[35] के अनुसार शिक्षा सामाजिक परिवर्तन हेतु उत्प्रेरक की तरह काम करती है और उनके अनुसार इस तथ्य की पुष्टि भारत के विभिन्न राज्यों में विकास अन्तर से होती है। उदाहरण के लिए केरल का ऐतिहासिक अनुभव सामाजिक

---

[34] ऐकरा जैकब (1996). 'शैक्षिक अवसरों की समानता भारत में अनुसूचित जातियों का दृष्टांत', परिप्रेक्ष्य, अंक'2

[35] ड्रिज, जे. एवं सेन, ए. (2003): 'बेसिक एजुकेशन एज ए पॉलिटीकल इश्यू' तिलक, बी.जी. (सं) एजुकेशन सोसायटी एंड डवलपमेंट, नीपा से उद्धृत

परिवर्तन तथा शिक्षा में प्रगति के द्विमुखी सम्बन्ध को सामने लाता है। शिक्षा में प्रसार ने परम्परागत जातिगत, वर्गीय तथा लैंगिक असमानताओं को कम करने में मदद की है, तो वहीं दूसरी ओर इन असमानताओं के दूर होने से शिक्षा को बढ़ावा मिला है।

19वीं शताब्दी में ही केरल ने शिक्षायी रास्ता अपनाया तथा एक समय बाद सामाजिक क्षेत्र में ये उपलब्धियाँ पाई। जबकि दूसरी ओर उन उत्तर भारतीय प्रदेशों, जो कि शिक्षायी क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं, ने परंपरागत असमानताओं, विशेषतया जाति व लिंग के संदर्भ में, उन्मूलन में कोई खास प्रगति नहीं की है।

भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत संस्करण ने शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता को अपने ही ढंग से प्रभावित किया है। ब्रिटिश काल में 'अधोमुखी निस्पंदन के सिद्धान्त' ने अभिजात वर्ग को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित करने पर जोर दिया तथा जनता की शिक्षा की उपेक्षा की। परिणामत: गरीब व निचले वर्ग शिक्षा से वंचित रहे। और इस प्रकार शिक्षा को उच्च जातियों का विशेषाधिकार ठहराने वाली परंपरागत जाति, प्रथा और अभिजात वर्ग को शिक्षा देने की ब्रिटिश नीति ने एक दूसरे को बल पहुँचाते हुए भारत में एक अत्यधिक असमान शिक्षा व्यवस्था को जन्म दिया। और इसके परिणाम स्वरूप 'ऐसी अनेक अनुसूचित जातियाँ हैं जिनमें साक्षरता दर शून्य हैं'[36] जैसे कथनों के पीछे छुपे सामाजिक संबंधों व असमान अवसरों की पोल खुलती है।

शिक्षा व्यक्ति को, एक विशिष्ट जीवन पद्धति को जीने के लिए तैयार करने का उपकरण है। यह प्रत्येक सामाजिक स्तर के अनुरूप 'सामाजिक व्यक्ति' की माँग को बनाए रखने की कोशिश करती है।

इस प्रकार का 'विभेदीय कार्य', 'स्थिर तंत्र' वाले स्तरीकृत समाज में ज्यादा सुस्पष्ट देखे जा सकता है जबकि 'चयनात्मक-कार्य' अपेक्षाकृत खुले समाज में ज्यादा महत्व पाते हैं।[37] कई अध्ययन इस बात को प्रमाणित करते हैं कि औपचारिक शिक्षा,

---

[36] अग्रवाल, यश (1994). अनुसूचित जातियों में साक्षरता की प्रवृत्तियाँ, परिप्रेक्ष्य वर्ष 1, अंक 2.

[37] राव, एम.एस.ए. (1975). 'एजुकेशन, सोशल स्ट्रेटीफिकेशन एंड मॉबिलिटी,'एम.एस. गोरे एवं अन्य (एड.) पेपर्स इन सोशियोलॉजी आफ एजुकेशन इन इंडिया, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 127-146 में उद्धृत

सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक–आर्थिक स्थिति परिवर्तन, व्यावसायिक गतिशीलता आदि में महत्वपूर्ण रूप से भूमिका निभाती है।

एक तरफ यह व्यावसायिक गतिशीलता से प्रत्यक्ष रूप से एवम् आर्थिक स्तर के अग्रगामी सुधारों से संबंधित है वहीं दूसरी तरफ यह सामाजिक स्वीकार्यता, हैसियत, प्रतिष्ठा आदि के लिए महत्वपूर्ण 'घटक' का निर्माण करती है।[38]

नीलसन (1975)[39] शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के अपने अध्ययन में शिक्षा, गतिशीलता और सामाजिक समानता को एक वृहद सामाजिक संरचनात्मक विश्लेषण में देखने की आवश्यकता पर जोर देते हैं। उनका मानना है कि औद्योगिक समाजों में स्थिति सापेक्ष अवस्थिति और सामाजिक गतिशीलता के लिए शिक्षा एक पूर्व आवश्यक शर्त है। दुबे (1994)[40] के अनुसार *शिक्षा गतिशीलता को बढ़ावा देने वाली तथा सामाजिक परिवर्तन का एक औजार है।*

इसी बात को अधिक वर्णित करते हुए श्रीनिवास (1967)[41] कहते हैं कि *निम्न जातियों ने यह भली–भांति महसूस कर लिया है कि शिक्षा के द्वारा वे आवश्यक शक्ति प्राप्त कर लेंगे, और इस शक्ति द्वारा वे 'उच्च' वर्ग के प्रतीकों को आसानी व बेहतर ढंग से अपना पाएंगे।* साथ ही राव (1968)[42] भी मानते हैं कि आधुनिक शिक्षा ने भारतीय समाज में व्यवसायों के जातीय आधार को बदलने तथा प्रदत्त संस्करण को उपलब्धि–आधारित श्रेणीयन तथा बदलाव में शिक्षा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पांडे (1988)[43] के अनुसार शिक्षा, अनुसूचित जातियों की सामाजिक–स्थिति, व्यावसायिक

---

[38] वानखेड़े, जी.जी. (1999), सोशल माबिलिटी एंड सिड्यूल कास्ट: रिसिडिंग हॉरिजन', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 117

[39] नीलसन, जे.पी. (1975). 'एजुकेशन एंड सोशल माबिलिटी' (ए टेक्स्ट विद रिफरेंस टू शेडयूल कास्ट्स), दया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

[40] दुबे, श्यामाचरण (1994), 'शिक्षा, समाज और भविष्य', राधकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

[41] श्री निवास, एम.एन. (1967), आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

[42] रावे, डब्ल्यू.एस. (1968), 'माबिलिटी इन नाइनटिंथ सेंचुरी कास्ट सिस्टम', मिल्टन सिंगर एंड बी. एस. कोन (एड.) स्ट्रक्चर एंड चेंज इन इंडियन सोसायटी, शिकागो, एडलाइन से उद्धृत।

[43] पांडेय, पी.एन. (1988). 'एजुकेशन एंड सोशल माबिलिटी (ए टेक्स्ट विद रिफ्रेंस टू शेड्यूल कास्ट्स), दया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

संरचना, जीवन-शैली, आदतों व तौर-तरीकों के संदर्भ में गतिशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आधुनिक शिक्षा द्वारा अन्तर्पीढ़ी गतिशीलता की दर में एकदम तेजी आई है।

शोवेब (1986)[44] वाराणसी में 'हरिजनों में शिक्षा व गतिशीलता' विषय पर किए गए अध्ययन में बताते हैं कि 'चमार' दलितों में सबसे प्रभावशाली समूह है जिसमें बदलाव तथा गतिशीलता की दर उँफची है।

इसी बात को और विस्तृत करते हुए राम (1988)[45] कहते हैं कि भारत में विकास के फायदों का प्रावधान अनुसूचित जातियों व जनजातियों को एक सामाजिक श्रेणी के रूप में मानकर किया गया है; जबकि इनका फायदा व्यक्ति विशेष या परिवार विशेष को ही मिलता है। साथ ही वे बताते है कि क्यों बहुसंख्य दलित जातियों की पहुँच इन अवसरों तक नहीं बन पाती हैं। इनमें मुख्यत: वे नीतियों व प्रावधानों को ढंग से लागू न करना, दलितों में शिक्षा की कमी, जागरूकता की कमी, प्रोत्साहन की कमी इत्यादि को मानते हैं।

साथ ही वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि कुछ जातियों के कुछ सदस्यों ने सरकारी प्रावधानों को उपयोग में लाकर महसूस किया है कि शिक्षा उपयोगी है तथा वे अपने परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए अपने बच्चों को स्कूल भेज रहे हैं।

भारत में सामाजिक गतिशीलता : एक ऐतिहासिक समझ

आधुनिक और पश्चिमी सभ्यता के परिचय के साथ ही वर्तमान शिक्षा के अर्थस्वरूप, दृष्टिकोण एवं विषय-वस्तुओं में महत्वपूर्ण एवं आवश्यक बदलाव हुए हैं। जीवन के आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और समानता की अवधारणा ने राष्ट्रीय आंदोलन एवं सामाजिक पुनर्निर्माण की भावना के लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभाई।

भारतीय समाज व्यवस्था इतनी जटिल थी कि जटिल 'जाति-व्यवस्था' के

---

[44] सोवेब, एम. (1986). एजुकेशन एंड सोशल माबिलिटी अमंग हरिजन्स, वोहरा पब्लिकेशन, इलाहाबाद

[45] राम, एन. (1998). 'द मोबाइल शेडयूल कास्ट्स: राइज ऑफ ए न्यू मिड्ल क्लास' हिंदुइज्म प. कार्पोरेशन, दिल्ली

भीतर सामाजिक गतिशीलता प्राय: असंभव ही थी।[46] जेम्स सिल्वरबर्ग (1968)[47] के अनुसार भारतीय कृषक समुदाय में ज्यादातर सामाजिक अन्योन्यक्रिया, केवल और मुख्यत: अन्त:जातीय व्यवहार नहीं है। यद्यपि पूर्व ब्रिटिश कालीन भारतीय समाज प्राय: स्थिर ही था, फिर भी यह स्थानीय पदानुक्रम में व्यक्तिगत जाति की उच्च और निम्न गतिशीलता को बाधित नहीं करता था। इसी प्रकार दूसरा दृष्टिकोण, जो कि गतिशीलता के दो प्रमुख तरीकों को दर्शाता है जिनमें पहला, राजनैतिक तंत्र की धारा-प्रवाहिकता विशेष रूप से निम्न स्तर तथा दूसरा स्थानीय जनांकिकीय स्थिति के कारणवश अतिरिक्त कृषि भूमि की उपलब्धता जिसमें खेती की जा सकती थी, पर आधारित है।[48]

मध्यकालीन भारत में सामाजिक गतिशीलता स्थानिक गतिशीलता के रूप में थी और गतिशीलता की इकाई 'परिवार' था। 'कॉरपोरेट गतिशीलता' की आवश्यकता तथा सुविधाएँ, दोनों ही अस्तित्व में नहीं थी। बर्टन स्टीन (1976)[49] के अनुसार साक्ष्यों से यह पता चलता है कि सामाजिक गतिशीलता भारत में एक नई प्रघटना नहीं है। उन्होंने 'शूद्र श्रीवैष्णव' वर्ग द्वारा धार्मिक भूमिका के आधार पर 15वीं सदी में सामाजिक गतिशीलता प्राप्त करने को रेखांकित किया। इसी बात का समर्थन राव यह कहते हुए करते हैं कि ब्रिटिश-पूर्व भारत तथा अंग्रेजी शासन के दौरान कुछ जातियाँ सामाजिक गतिशीलता के कारण उच्च प्रस्थिति तक पहुँची।[50] 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के तहत सैन्य सेवा, दरबारी, शिल्पकला सेवा और नए उभरते और फैलते

---

[46] बार्बर, बी. (1957) 'सोशल स्ट्रेटीफिकेशन', राबर्ट के. मेर्टन (एड.) 'ए कम्प्रीहेंसिव एनालिसिस आफ स्ट्रक्चर एंड एजुकेशन, हारॉर्ट, न्यूयार्क, पृ. 342

[47] सिल्वरवर्ग, जेम्स (एड.) (1968) 'सोशल माबिलिटी इन कास्ट सिस्टम', द हेग, पृ. 13-17

[48] श्रीनिवास, एम.एन. (1968) 'माबिलिटी इन कास्ट सिस्टम इन सिंगर', एम एंड बी.एस. कोन (एड.) स्ट्रक्चर एंड चेंजेज इन इंडियन सोसायटी, एडलाइन पब्लिकेशन, पृ. 189-200

[49] स्टीन, बी. (1976) 'सोशल माबिलिटी एंड मेडिएवल साउथ इंडियन हिंदू सेक्ट्स', साउथ इंडिया में प्रकाशित निबंध, विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 78-94

[50] राव, एम.एस.ए. (1975) 'एजुकेशन, सोशल स्ट्रेटीफीकेशन एंड माबिलिटी' एम.एस. गोर एंड अदर्स (सं.) पेपर्स आफ सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन इन इंडिया, एन.सी.इ.आर.टी. नई दिल्ली, पृ. 127-146

शहरों के मध्यमवर्ग की भूमिका के द्वारा सामाजिक गतिशीलता में तेजी देखी गई थी।[51]

गौरतलब है कि भारत में स्थानीयता, कृषि और उससे संबंधित अन्य कार्यों में सामूहिक जाति वर्ग के महत्व के चलते होने वाली सामाजिक गतिशीलता वस्तुत: वर्ग गतिशीलता ही थी (मेरिट, 1955)। इस कथन की पुष्टि बैले (1957)[52] द्वारा उड़ीसा के गाँव बीसीपारा में किए अध्ययन में भी होती है।

इसी तरह बारबर, परम्परागत भारत में सामाजिक गतिशीलता के लिए कुछ आंतरिक प्राकृतिक कारकों जैसे अच्छी कृषि या अकाल को जिम्मेदार मानते है।[53]

हारपर ने सन् 1878 के अकाल का परिणाम मैसूर राज्य के मलाड़ भाग में 'अस्पृश्यों' की एक जाति को दासता से, करारनामें द्वारा मुक्त मजदूर तंत्र का हिस्सा बनने के रूप में दिखाया है।[54]

बैले[55] ने, ब्रिटिश भारत में सामाजिक गतिशीलता के निम्नलिखित आधारभूत कारकों को उत्तरदायी बताया, जिनमें 19वीं सदी का भूमि सर्वेक्षण तथा भूमि बंदोबस्त व्यवस्था कार्य, सम्पूर्ण भारत के लिए एक राजनैतिक शक्ति का उदय, प्रशासनिक स्वरूपों जैसे सैन्य व्यवस्था इत्यादि का सबके लिए खुला होना, भूमि-बंदी व्यवस्था के कारण नये आर्थिक अवसरों का सृजन, भूमि क्रय संबंधी अधिकार तथा मिशनरियों की भूमिका प्रमुख है।

गतिशीलता का एक बहुत महत्वपूर्ण आधुनिक आयाम, 'आर्थिक आयाम' है। यह व्यक्ति, तथा उसके संबंधियों के व्यावसायिक भूमिका को भू-स्वामित्व तथा संचालन, काश्तकार या कृषिकार्यों के संदर्भ में निर्दिष्ट करता है। किसी गाँव विशेष में पाई जाने वाली ''प्रभु जाति'' की स्थिति सामाजिक पदानुक्रम में गाँव की अन्य जातियों से नीची

---

[51] सिंडर, लियोन (1968) 'द इंस्टेबिलिटी ऑफ अर्बन एंड रूरल कास्ट्स इन नार्दर्न इंडिया अंडर द इंपैक्ट ऑफ मोहम्मडनिज़्म' जे. सिल्वरबर्ग पृ. 28 से उद्धृत।

[52] बैले, एफ.जी. (1957) 'कास्ट एंड इकोनॉमिक फ्रंटीयर: ए विलेज हाईलैंड उड़ीसा,' वानखेड़े (1999) पृ. 18-19 से उद्धृत।

[53] बार्बर, बी., सोशल माबिलिटी इन हिंदू इंडिया' जे. सिल्वरबर्ग पृ. 18-35 से उद्धृत।

[54] हार्पर, ई.बी., 'सोशल कन्सेक्वेंसेज ऑफ एन अनसक्सेसफुल लो कास्ट मूवमेंट' जे. सिल्वरबर्ग, 1968. पृ. 36-65 से उद्धृत।

[55] बैले, एफ.जी. (1957) से उद्धृत।

हो सकती है। उदाहरण के लिए 'रामखेड़ी' गाँव में राजपूत जाति, ब्राह्मण जाति से अधिक प्रभुत्व रखती है।[56]

प्रत्येक ग्राम में, कोई न कोई एक 'जाति' अपनी आर्थिक या भू-स्वामित्व उत्कृष्टता के कारण से 'प्रभु-जाति' के रूप में पहचान बनायें रखती है। आधुनिक भारत में सामाजिक गतिशीलता का एक महत्वपूर्ण गुण जिसमें अपनी जाति के सफल व्यक्तियों द्वारा स्वयं की जाति के अन्य लोगों के आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए लगातार कार्य करना है।[57]

हमारा संविधान सभी के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता की गारण्टी देता है तथा कुछ कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए उन्हें मदद करता है। लेकिन ये विशिष्ट सुविधाएं समान रूप से समुदाय के सभी वर्गों तक नहीं पहुँच पाती है। यह समुदाय विशेष में एक नये तरह के 'स्तरीकरण' का निर्माण करती हैं। यह अनुसूचित जातियों में शिक्षित और अशिक्षित के अंतर को गहरा कर देती हैं। सारांशत: आधुनिक भारत में सामाजिक स्तरीकरण का रेखाचित्र दर्शाता है कि सापेक्षिक खुलापन, विभिन्न स्तरों तथा सापेक्षिक समता के बीच गतिशीलता एवं प्रतिस्पर्धा, बढ़ती हुई स्तरीय विषमता में महत्वपूर्ण कारक है।

कुमार एवं हीथ (2000)[58] भारत में सामाजिक गतिशीलता के प्रतिरूप को विश्लेषित करते हैं जिसमें वे सरकार द्वारा किए गए प्रयासों का सामाजिक गतिशीलता पर प्रभाव तथा जाति व व्यवसाय के संबंधों को वृहद स्तर पर देखते हुए यह जानने का प्रयास करते हैं कि क्या कोई बदलाव हुआ है, और क्या भारतीय समाज ज्यादा लचीला व गतिशील बना है? वे पाते हैं कि अवसरों में वृद्धि हुई है किन्तु पिता व पुत्र के व्यवसाय संबंध या वर्ग व व्यवसाय संबंध को सीधे-सीधे प्रभावित/कमजोर करने हेतु कोई व्यवस्था नहीं बनी है। गरीब वर्ग तथा दलित वर्गों में शारीरिक श्रम से वैतनिक कार्यों की ओर गतिशीलता देखी जा सकती है। कुल मिलाकर ढाँचागत तस्वीर ज्यों की त्यों बनी हुई है। संरचनात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है।

---

[56] मेयर, ए.सी. (1956) 'सम हिरारकियल एस्पेक्ट्स ऑफ कास्ट' साउथ-ईस्ट जर्नल ऑफ एन्थ्रोपोलॉजी, वा. XII पृ. 111-44

[57] बार्बर, बर्नाड पृ. 21 से उद्धृत

[58] कुमार, एस., हीथ. ए. एंड हीथ ओ., (2002). 'चेजिंग पैटर्न ऑफ सोशल माबिलिटी: सम ट्रेंड्स ओवर टाइम' इ.पी.डब्ल्यू अक्टूबर 5.

चूंकि इस अध्ययन में सामाजिक गतिशीलता संप्रत्यय की खांटी समाजशास्त्रीय मानक परिभाषा[59] को न लेते हुए उसमें विभिन्न मुद्दे जोड़कर इसे लचीला कर विकसित किया गया है। इस कारण इसमें शिक्षा एवं शिक्षा की भूमिका केन्द्रीय विषय-वस्तु बन जाती है, शोधार्थी ने उपरोक्त सैद्धांतिक विवेचना के पश्चात् सामाजिक गतिशीलता को शिक्षा विशेष के संदर्भ में समझने के लिए किसी एक चश्में का इस्तेमाल न करके, मुद्दों की मांगानुसार विभिन्न चश्मों का इस्तेमाल किया है ताकि स्थितियाँ अपने यथार्थ रूप में चित्रित हो सके।

इस अध्ययन में, लिपसेट एवं जिट्टरबर्ग (1966) के प्रारूप से, व्यवसाय, उपभोग प्रतिरूप को लिया गया है। उनके द्वारा प्रयुक्त सत्ता समीकरण, सामाजिक हैसियत, सामाजिक वर्ग को छोड़ते हुए केवल सामाजिक भागीदारी को समझने का प्रयास किया है जिसमें एक जाति से दूसरी जाति की अन्त:क्रिया सार्वजनिक क्षेत्र में निर्णयन क्षमता, सामाजिक स्वीकार्यता आदि को समझा गया है। नन्दूराम (1988) के अध्ययन कार्य से, शिक्षा एवं आय को सामाजिक गतिशीलता की जाँच का आयाम बनाया गया है। पिता एवं पुत्र के व्यवसाय एवं आय के आधार पर भी सामाजिक गतिशीलता के आयाम पर चर्चा की गई है। सामाजिक, भागीदारी के विभिन्न आयाम इनके प्रारूप से भी विकसित किए गए हैं। विश्लेषण करते समय हैसियत, सामंजस्यता (होमन्स, 1962) संदर्भित समूह सिद्धांत (मर्टन व रोजी 1968), डामले के संदर्भ समूह व्यवहार सिद्धांत के भारतीय संस्करण तथा परांजपे (1970) की जातीय एकात्मीकरण अवधारणा को भी प्रयुक्त किया गया है।

सामाजिक गतिशीलता एवम् वाल्मीकि समुदाय

आधुनिक राजनैतिक संरचना और इसकी सहगामी व्यवस्थाओं या उप-व्यवस्थाओं के साथ भारतीय जाति व्यवस्था के अंदर और बाहर तथा परम्परागत सामाजिक संबन्धों में अपेक्षाकृत एक बदलाव दृष्टिगत होता है। यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से एक ऐसी सामाजिक संरचना का समर्थन करता है, जो वर्ग-व्यवस्था, व्यक्तिगत एवं सांस्कृतिक, स्वातंत्र्य एवं परम्परागत संबन्धों की व्यवस्था एक साथ बीजारोपित होकर एक नई, किंतु संक्रमित सामाजिक संरचना एवं सामूहिक जीवन विन्यास को जन्म देती है।

[59] निकोलस, ए. एंव अन्य (1988), 'द पेंग्विन डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी' द्वितीय संस्करण, पेंग्विन बुक्स, यू.के.

यद्यपि यथार्थ के स्तर पर ठोस रूप में अभी भी सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव की इस सैद्धांतिक फसल को उगाया जाना या उत्पादक बनाना अपरिहार्य है। तथापि व्यक्तिगत एवं पारिवारिक स्तर पर सामाजिक-आर्थिक सांस्कृतिक-शैक्षिक परिस्थितियों में सुधार के माध्यम से व्यक्ति एवं परिवार को परम्परागत सामाजिक विन्यास एवं उसके स्तरीकरण से अपनी स्थिति या भूमिका को तलाशने या स्थापित या पुन:स्थापित करने के हालात स्वयंसिद्ध तरीके से या आनुभाविक रूप से सिद्ध होते हैं।

हांलाकि नई संरचनाएं, गैर-विभेदकारी नहीं हैं बल्कि अपनी तरह की एक विभेदकारी एवं असमान् विन्यास उनमें निहित है; तथापि यह परम्परागत विभेदीकृत समाज, सामाजिक-व्यवस्था एवं उसको पुनर्जीवित करने के तरीकों एवं नियमों से भिन्न है। इस संरचना में व्यक्तिगत एवं सामूहिक अनुराग, निष्ठा एवं उत्तरदायित्व पारम्परिक व्यवस्था से पृथक रूप एवं तरीकों से परिभाषित किया गया है। इस तरह, यह नई सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति, परिवार एवं एक समाज विशेष को अवसर एवं संसाधन के सापेक्ष एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में अर्थपूर्ण संचरण को संभावी बनाती है। प्रस्तुत अध्ययन में इस संचरण, जिसे सामाजिक गतिशीलता के रूप में संज्ञापित किया गया है, को इस अध्ययन उद्देश्य के तहत प्रमुख रूप से फोकस प्राप्त हुआ है। सामाजिक गतिशीलता जैसा कि प्रस्तुत अध्ययन के अध्याय-तीन में परिभाषित किया गया है, एक बहुविमीय प्रक्रिया और उसका प्रतिफल है। सामाजिक गतिशीलता को बहुविमीय स्तर पर एवं रूप में समझने के लिए अध्ययन में जिट्टरबर्ग और लिपसैट (1966) तथा नंदूराम (1988) के सैद्धांतिक एवं अवधारणात्मक प्रतिमान को संशोधित कर अध्ययन विषय के अनुसार निर्मित किया गया है।

बहुवैकल्पिक जीवन परिस्थितियों (सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक-शैक्षिक)में एक से दूसरी परिस्थितियों में संक्रमण और संरचना के रूप में सामाजिक गतिशीलता, *शिक्षा, व्यवसाय, उपभोग प्रकार, आय एवं सामाजिक भागीदारी आदि* के धरातल पर या परिसर में प्रघटित होती है।

इन्हीं आयामों को पकड़ने के लिए यह उद्देश्य सूत्रबद्ध किया गया है, अर्थात चयनित प्रतिदर्श (व्यक्ति/परिवार) के शिक्षा, व्यवसाय, आय उपभोग प्रकार एवं सामाजिक भागीदारी जैसी स्थितियों को अन्त: और अन्तरा पीढ़ी के सापेक्ष आकलित

तालिका: 1 प्रत्युत्तरकर्ताओं का अपने पिता के व्यवसाय प्रकार से विचलन

क्र. सं.	व्यवसाय श्रेणी		व्यवसाय प्रकार विचलन			योग
			पिता से कम	पिता के समकक्ष	पिता से अधिक	
1.	निम्न श्रेणी व्यवसाय	श्रमिक	04	16	–	20
2.		जमादार/ सफाई कर्मचारी	05	12	17	34
3.		चपरासी	01	03	08	12
4.		ड्राइवर	01	02	06	09
5.	गैर-निम्न श्रेणी	तकनीशियन	—	—	04	04
6.	व्यवसाय	लिपिक/ लेखाकार	—	—	06	06
7.		शिक्षक	—	—	01	01
8.		वकील	—	—	03	03
9.		सामाजिक कार्यकर्त्ता	—	—	04	04
10.		लघु व्यवसायी	02	04	01	07
	योग (प्रतिशत)		13	37	50	100

स्रोत : शोधार्थी द्वारा किये गये गृह-आधारित सर्वेक्षण (2005-2006) से तैयार तालिका।

सबसे पहले, इन आंकड़ो से प्राप्त तस्वीर से यह स्पष्ट होता है कि तकनीशियन, लिपिक/लेखाकार, शिक्षक, वकील, सामाजिक कार्यकर्ता आदि अपेक्षाकृत एक शिक्षित एवं कुशल वर्ग है। इसके दूसरी ओर इनकी व्यावसायिक स्थिति अपने पिता की व्यावसायिक स्थिति की तुलना में उच्च है। इसके अतिरिक्त, इस प्रतिदर्श में 6 व्यक्ति ऐसे हैं जो लघु-व्यवसायी हैं, और उनका व्यवसाय अपने पिता के व्यवसाय से समकक्ष या उससे कम है।

तालिका:2 प्रत्युत्तरकर्ताओं का अपने पिता से उपभोग प्रतिरूप में विचलन[1]

क्र. सं.	व्यवसाय श्रेणी		सामान्य आवश्यक उपभोग[2]			योग
			पिता से कम	पिता के समकक्ष	पिता से अधिक	
1.	निम्न श्रेणी व्यवसाय	श्रमिक	02	05	13	20
2.		जमादार/ सपफाई कर्मचारी	—	09	25	34
3.		चपरासी	—	04	08	12
4.		ड्राइवर	—	—	09	09
5.	गैर-निम्न श्रेणी	तकनीशियन	—	01	03	04
6.	व्यवसाय	लिपिक/ लेखाकार	—	—	06	06
7.		शिक्षक	—	—	01	01
8.		वकील	—	—	03	03
9.		सामाजिक कार्यकर्त्ता	—	—	04	04
10.		लघु व्यवसायी	—	04	03	07
	योग (प्रतिशत)		**02**	**23**	**75**	**100**

स्रोत : 1. शोधार्थी द्वारा किये गये गृह-आधारित सर्वेक्षण (2005-2006) से तैयार तालिका।

2. सामान्य आवश्यक उपभोग में मनोरंजन गतिविधि , भौतिक सुख-सुविधाओं, वाहन, उत्सव आदि पर किए जाने वाले व्यय को सम्मिलित किया गया है जिसका आकलन शोधार्थी ने प्रतिभागियों के उपलब्ध संसाधन/सुविधाओं के आधार पर किया।

तालिका:3 प्रत्युत्तरकर्ताओं का उनके पिता से आय स्तर में विचलन

क्र.सं.	व्यवसाय श्रेणी		आय विचलन			योग
			पिता से कम	पिता के समकक्ष	पिता से अधिक	
1.	निम्न श्रेणी व्यवसाय	श्रमिक	–	09	11	20
2.		जमादार/ सपफाई कर्मचारी	–	05	29	34
3.		चपरासी	–	–	12	12
4.		ड्राइवर	–	02	07	09
5.	गैर-निम्न श्रेणी	तकनीशियन	–	–	04	04
6.	व्यवसाय	लिपिक/ लेखाकार	–	–	06	06
7.		शिक्षक	–	–	01	01
8.		वकील	–	–	03	03
9.		सामाजिक कार्यकर्त्ता	–	–	04	04
10.		लघु व्यवसायी	02	01	04	07
	योग (प्रतिशत)		**02**	**17**	**81**	**100**

स्रोत : शोधार्थी द्वारा किये गये गृह-आधारित सर्वेक्षण (2005-2006) से तैयार तालिका।

किया गया है। उक्त उद्देश्य के आकलन का पहला चरण उन आंकड़ों के विश्लेषण से संबन्धित है जो पीढ़ीगत संचरण या बदलाव की प्रक्रिया को संबोधित करते है। इन आँकड़ो के माध्यम से न केवल पीढ़ीगत बदलाव बल्कि उसकी प्रकृति का आकलन भी प्रस्तुत है।

प्रस्तुत आँकडों का विहंगम सर्वेक्षण (तालिका : 1) पीढ़ीगत व्यावसायिक संचरण की एक हद तक सकारात्मक छवि प्रस्तुत करता है। 100 व्यक्तियों के प्रतिदर्श में आधी जनसंख्या अपने पिता से अधिक आर्थिक और सांगठनिक श्रेणी वाले व्यवसाय से संबन्धित है। शेष आधी जनसंख्या में 37% लोग अपने पिता के समकक्ष हैं, जबकि शेष 13% व्यक्ति अपने पिता से व्यवसाय में निम्न श्रेणी पर पदस्थापित हैं। परन्तु, इन आंकड़ों पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश (75%) का व्यवसाय निम्न श्रेणी जैसे सफाई कर्मचारी, श्रमिक, जामादार, चपरासी, ड्राईवर आदि का है। इसमें महत्वपूर्ण स्थिति यह है कि इस श्रेणी विशेष में लगभग 60% प्रतिभागियों का व्यावसायिक स्तर या तो अपने पिता के समकक्ष है या उनसे कम है। दूसरी ओर प्रतिदर्श में मात्र 25% व्यक्ति गैर-निम्न श्रेणी व्यवसाय से हैं। इस श्रेणी वर्ग की दिलचस्प स्थिति यह है कि लगभग 76% प्रतिभागियों का व्यवसाय अपने पिता के व्यवसाय से उफपर है। अपवाद स्वरूप कुछ लघु व्यवसायी हैं, जिनका भागीदारी 24% है, का व्यवसाय अपने पिता के समकक्ष या उनसे कम है।

प्रस्तुत प्रतिदर्श में बेहतर व्यावसायिक स्थिति में के व्यक्तियों की व्यावसायिक प्रस्थिति अपने पिता से अधिक है; जबकि इसके दूसरी ओर निम्न व्यावसायिक श्रेणी में पदस्थापित व्यक्तियों में अधिकांश अपने पिता से कम है; या फिर उनके समकक्ष हैं।

यह पीढ़ीगत अंतर, यह स्पष्ट करता है कि 50% व्यक्ति अपने पिता से आगे हैं, और विशेषत: वे जो गैर-निम्न श्रेणी व्यवसाय वर्ग में पदस्थापित हैं। यद्यपि व्यवसाय की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता का गुणांक व सूचकांक है तथापि, अध्ययन के विषय की व्याख्या के लिए इस स्थिति के इतर जाकर पीढ़ीगत व्यावसायिक संचरण और शिक्षा के बीच के रिश्ते की जांच-पड़ताल आवश्यक है। इस आवश्कता का अनुपालन करते हुए शोध अध्ययन में समूह-साक्षात्कार, अवलोकन विधि को *फोलो-अप* उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया गया।

तालिका: 4 प्रत्युत्तरकर्ताओं का उनके पिता से सामाजिक भागीदारी में विचलन

क्र.सं.	व्यवसाय श्रेणी		शिक्षा स्तर			
			पिता से कम	पिता के समकक्ष	पिता से अधिक	
1.	निम्न श्रेणी व्यवसाय	श्रमिक	04	10	06	20
2.		जमादार/ सपफाई कर्मचारी	03	18	13	34
3.		चपरासी	01	06	05	12
4.		ड्राइवर	01	05	03	09
5.	गैर-निम्न श्रेणी	तकनीशियन	.	04	.	04
6.	व्यवसाय	लिपिक/ लेखाकार	.	04	02	06
7.		शिक्षक	.	.	01	01
8.		वकील	.	.	03	03
9.		सामाजिक कार्यकर्त्ता	.	.	04	04
10.		लघु व्यवसायी	02	04	01	07
	योग (प्रतिशत)		**11**	**51**	**38**	**100**

स्रोत: शोधार्थी द्वारा किये गये गृह-आधारित सर्वेक्षण (2005-2006) से तैयार तालिका।

पिता-पुत्र की व्यावसायिक स्थितियाँ तो लगभग स्पष्ट एवं महत्वपूर्ण रूप से सार्थक हैं, परन्तु सामाजिक गतिशीलता से इसका संबन्ध सापेक्षिक आय-स्तर एवं उपभोग की प्रकृति से स्पष्ट हो सकता है। इस पक्ष से संबंधित सूचनाएं (तालिका 2 तथा 3 में) ऊपरी तौर पर यह दर्शाती है कि लगभग 75% प्रतिभागियों का आय एवं उपभोग स्तर पिता के सापेक्ष अधिक हैं। इसमें 23% प्रतिभागी ऐसे हैं जिनकी आय उनके पिता की आय स्तर के समकक्ष है। उसमें तकनीशियन और लघु व्यवसायी को छोड़कर, सभी निम्न श्रेणी के व्यवसाय से संबंधित हैं। गैर-निम्न श्रेणी के व्यवसाय वाले व्यक्तियों में लगभग पूर्ण बहुमत में प्रतिभागी, आय और उपभोग के मामले में अपने पिता से आगे हैं। सिर्फ दो प्रतिभागी हैं, यानि कुल प्रतिदर्श का मात्र 2%, जिसकी आय और उपभोग स्तर अपने पिता से कम है। परन्तु यह प्रतिभागी श्रमिक वर्ग से हैं।

पीढ़ीगत व्यावसायिक अंतर तथा आय एवं उपभोग के स्तर में पीढ़ीगत भिन्नता एक परिकल्पनात्मक स्तर (रूप) से एक सकारात्मक जुड़ाव को रेखाकिंत करती है। यह परिकल्पनात्मक जुड़ाव इसके आगे पीढ़ीगत सामाजिक गतिशीलता की स्थिति को और भी अधिक स्पष्ट करते हैं, परन्तु यह स्थिति या तथ्य सिर्फ संरचनात्मक स्तर पर ही पीढ़ीगत सामाजिक आर्थिक संचरण को दर्शाती है। प्रकार्यात्मक स्तर पर, पीढ़ीगत-सामाजिक गतिशीलता की पड़ताल के लिए प्रतिभागियों की सामाजिक भागीदारी एवं राजनैतिक हस्तक्षेप के सापेक्षिक स्तर एवं स्थिति की भी पड़ताल करने की आवश्यकता है।

अत: सामाजिक भागीदारी एवं हस्तक्षेप को निर्णय लेने की क्षमता, सामूहिक एवं सामाजिक निर्णय एवं मंचों पर भागीदारी तथा विभिन्न सामुदायिक एवं सामाजिक स्थितियों में हस्तक्षेप एवं नेतृत्व, सामाजिक-राजनैतिक संबन्ध के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है। सामाजिक भागीदारी एवं राजनैतिक हस्तक्षेप से संबन्धित (तालिका: 4 में) आंकड़ें यह प्रदर्शित करते हैं कि प्रतिदर्श का मात्र 38% हिस्सा ही अपने पिता की अपेक्षा सामाजिक भागीदारी या हस्तक्षेप में आगे है। लगभग 51% अर्थात् प्रतिदर्शो की आधी जनसंख्या, सक्रिय सामाजिक-राजनैतिक जीवन अपने पिता के समकक्ष व्यतीत करती है। 11% प्रतिभागी ऐसे हैं जिनमें दो व्यक्तियों को छोड़कर 9 निम्न श्रेणी के व्यावसायिक स्तर वाले व्यक्ति हैं और दो लघु व्यवसाय से संबन्धित है, जिनकी सामाजिक भागीदारी अपने पिता से कम है।

सामाजिक भागीदारी के संबन्ध में एकत्रित की गई सूचनाओं को जब व्यवसाय तथा आय एवं उपभोग के स्तर वाली सूचनाओं के समक्ष रखते हैं तो शोध की दृष्टि से एक दिलचस्प स्थिति प्रकट होती है। व्यावसायिक स्थिति तथा आय एवं उपभोग स्तर के बीच का सकारात्मक जुड़ाव व्यक्तियों की व्यावसायिक श्रेणी के साथ दिखता है, अर्थात गैर-निम्न श्रेणी के व्यवसाय वाले व्यक्तिफयों का अपने पिता के सापेक्ष व्यावसायिक ओहदा बढ़ा है तथा आय एवम् उपभोग के स्तर में भी पिता के सापेक्ष उनमें उर्ध्वाधर परिवर्तन आया है। *परन्तु*, सामाजिक भागीदारी एवं हस्तक्षेप के मामले में स्थिति उलट है। निम्न श्रेणी वर्ग के व्यवसाय से संबन्धित व्यक्तियों की सामाजिक भागीदारी सार्थक रूप में अपेक्षाकृत अधिक है। केवल गैर-निम्न श्रेणी के व्यवसाय वाले मात्र 11 व्यक्ति ही सक्रिय सामाजिक और राजनैतिक जीवन जीते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि व्यावसायिक गतिशीलता और सामाजिक भागीदारी एवं हस्तक्षेप में कोई अनिवार्य या सार्थक सह संबंध नहीं है।

विभिन्न चरणों पर अध्ययन के उद्देश्य से संबंधित आँकडों का विश्लेषण यद्यपि सामाजिक- आर्थिक, सांस्कृतिक संचरण या गतिशीलता की प्रवृत्ति का रेखाचित्र तो बनाता है परन्तु बहुत सारे कौतूहल एवं जिज्ञासाओं को भी जन्म देता है। यह स्थिति इन संख्यात्मक आँकड़ों के धरातल के इतर और नीचे जाकर मुद्दों को पूर्णत: तथा अन्य अर्थों के माध्यम से पकड़ने को प्रेरित करती है।

क्या शिक्षा और व्यावसायिक सोपान, उच्च आय एवम् उपभोग में कोई जुड़ाव है? यदि है तो इसकी प्रकृति, और इसका आयाम क्या हैं? इसके अतिरिक्त शिक्षा जिसका स्वाभाविक संबन्ध उच्च व्यवसाय श्रेणी वाले व्यक्तियों के साथ स्वयंसिद्ध होता है, किस प्रकार उनकी सामाजिक भागीदारी एवम् हस्तक्षेप की स्थिति एवं प्रकृति को प्रभावित या निर्धारित करती है। वस्तुत: वाल्मीकि समुदाय को सामाजिक रूप से गतिशील बनाने में शिक्षा या उससे संबंधित अन्य आयामों द्वारा एवम् उसकी भूमिका की पड़ताल करना है। सामाजिक गतिशीलता संप्रत्यय को शोधार्थी ने *बहुविमीय स्तर* एवं *रूप* में देखने का प्रयास किया है।

प्रस्तावित इस उद्देश्य में प्रतिभागियों की शिक्षायी स्थिति की समीक्षा उद्देश्य की मांगानुसार व्यावहारिक है। तालिका 5 इस दिशा में एक प्रयास है जो यह दिखाती है कि कुल प्रतिभागियों अर्थात् 100 प्रतिदर्शों में शिक्षायी वर्गीकरण विषम रूप में प्रदर्शित होता है। आंकड़ों का निरूपण यह प्रदर्शित करता है कि 25-50 वर्ष आयुवर्ग के इन

तालिका: 5 प्रत्युत्तरकर्ताओं की शिक्षायी स्थिति

क्र.सं.	व्यवसाय श्रेणी		शिक्षा स्तर						
			साक्षर	प्राथ.स्तर	उच्च स्तर	माध्य	महाविद्यालय	व्यावसायिक	योग
1.	निम्न श्रेणी	श्रमिक	03	11	06	–	–	–	20
2.	व्यवसाय	जमादार/सपफाई कर्मचारी	03	08	15	08	–	–	34
3.		चपरासी	–	02	08	02	–	–	12
4.		ड्राइवर	–	–	06	03	–	–	09
5.	गैर-निम्न	तकनीशियन	–	–	–	–		04	04
6.	श्रेणी व्यवसाय	लिपिक/ लेखाकार	–	–	–	–	06	–	06
7.		शिक्षक	–	–	–	–	01	–	01
8.		वकील	–	–	–	–	–	03	03
9.		सामाजिक कार्यकर्त्ता	–	–	–	01	03	–	04
10.		लघु व्यवसायी	–	02	04	01	–	–	07
	योग (प्रतिशत)		**06**	**23**	**39**	**15**	**10**	**07**	**100**

स्रोत: शोधार्थी द्वारा किये गये गृह-आधारित सर्वेक्षण (2005-2006) से तैयार तालिका।

प्रतिभागियों में मात्र 6% साक्षर हैं अर्थात् लिख-पढ़ और समझ सकते है। 23% प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं। जहां कक्षा 8 तक की शिक्षायी स्तर वर्ग में 39% व्यक्ति हैं, वहीं कक्षा 9 से कक्षा 12 तक के वर्ग में मात्र 15% व्यक्ति समाहित है। महाविद्यालय और व्यावसायिक शिक्षण स्तर वर्ग में 17% लोग हिस्सेदारी बनाते हैं अर्थात् तालिका 5 पर दृष्टि डालने से साफ होता है, कि जहां 68% व्यक्ति कक्षा 8 या उसके नीचे स्तर तक आते है, वहाँ केवल 15% व्यक्ति ही माध्यमिक स्तर के आस पास तक पहुंचे हैं। दूसरी ओर स्थिति यह है कि कक्षा 8 से कक्षा 12 तक के वर्ग में लगभग 54% प्रतिभागी हैं, तो इससे ऊपर के शिक्षायी की वर्ग में केवल 17% प्रतिभागी ही हैं जो कि इसका लगभग एक तिहाई है।

प्रतिभागियों की शिक्षायी स्थिति का जब उनके व्यवसाय वर्ग श्रेणी प्रतिरूप से तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो कई विचारणीय बिंदुओ पर ध्यान आकर्षित होता है (देखे तालिका 5) निम्न श्रेणी व्यवसाय वर्ग में स्थित कुल 75 प्रतिभागियों में से एक भी व्यक्ति कक्षा 12 स्तर तक शिक्षित नही है और न ही उसमें कोई व्यवसायिक शिक्षा योग्यता धारी व्यक्ति है। गैर-निम्न श्रेणी व्यवसाय वर्ग में स्थित कुल प्रतिभागियों (25) में से लगभग 68% उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति है। इस प्रतिदर्श की इनके पिता के शिक्षायी स्तर से तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि गैर-निम्न श्रेणी व्यवसाय वर्ग में स्थित सभी प्रतिभागियों की शिक्षा या तो अपने पिता के समकक्ष है या उनसे अधिक है। (देखे तालिका 6)

समग्र रूप से देखें तो यह स्पष्ट है कि लगभग 85% प्रतिभागियों की शिक्षायी स्थिति उनके पिता से अधिक है, 13% की पिता के समकक्ष है तथा मात्र 2 व्यक्ति ऐसे हैं जो कि अपने पिता से कम शिक्षायी स्थिति को दर्शाते हैं।

उपरोक्त संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि शिक्षायी स्थिति एवं सामाजिक-व्यावसायिक संचरण में एक जुड़ाव देखा जा सकता है। सभी तालिकाओं को देखने से यह भी निष्कर्षित होता है कि प्रतिभागियों की शिक्षायी स्थिति एवं उनके व्यवसाय, उपभोग स्तर एवं आय में भी सकारात्मक जुड़ाव है।

उपरोक्त विश्लेषण कुछ तथ्यों को स्पष्ट करता है, मसलन, समुदाय की वर्तमान व्यवसाय स्थिति, आय एवं उपभोग स्तर, तथा सामाजिक भागीदारी आदि सामाजिक संचरण के घटकों के बीच 'शिक्षा' की भूमिका महत्वपूर्ण रूप से उभर कर सामने आती

तालिका: 6 प्रत्युत्तरकर्ताओं का उनके पिता के शिक्षायी स्तर से विचलन

क्र.सं.	व्यवसाय श्रेणी		शिक्षायी स्तर से विचलन			योग
			पिता से कम	पिता के समकक्ष	पिता से अधिक	
1.	निम्न श्रेणी व्यवसाय	श्रमिक	01	03	16	20
2.		जमादार/ सपफाई कर्मचारी	01	03	30	34
3.		चपरासी	—	02	10	12
4.		ड्राइवर	—	02	07	09
5.	गैर-निम्न श्रेणी व्यवसाय	तकनीशियन	—	01	03	04
6.		लिपिक/ लेखाकार	—	—	06	06
7.		शिक्षक	—	—	01	01
8.		वकील	—	—	03	03
9.		सामाजिक कार्यकर्त्ता	—	—	04	04
10.		लघु व्यवसायी	—	02	05	07
	योग (प्रतिशत)		**02**	**13**	**85**	**100**

स्रोत: शोधार्थी द्वारा किये गये गृह-आधारित सर्वेक्षण (2005-2006) से तैयार तालिका।

है। ध्यातव्य है कि समुदाय के (प्रतिदर्श में) जिन भी व्यक्तियों के पास महाविद्यालयी या व्यावसायिक शिक्षा की योग्यता है, उनमें से लगभग सभी अपने समुदाय का परम्परागत व्यवसाय छोड़ चुके हैं। इस स्तर की शिक्षायी योग्यता को धारण किए हुए यह प्रतिदर्श, अपने पूर्व पीढ़ीगत अर्थात् अपने पिता से न केवल आय, उपभोग स्तर, शिक्षा वरन् सामाजिक भागीदारी एवं हस्तक्षेप के मामले में भी सार्थक सकारात्मक अंतर रखता है। वहीं दूसरी ओर प्रारम्भिक शिक्षायी स्थिति वाला प्रतिदर्श अपने पूर्व के पीढ़ीगत स्तरों (आय–उपभोग स्तर, व्यवसाय स्तर आदि) के सापेक्ष कमोबेश एक जैसी स्थिति में रहते हुए कोई सार्थक अंतर नहीं दिखाता है। यहाँ इस विवेचना का आशय यह रेखांकित करना है कि शिक्षा का एक खास स्तर (क्रिटिकल लेवल ऑव एजुकेशन) इस तरह के विचलन के लिए अपनी भूमिका बनाता हुआ प्रतीत होता है। ऐसा कहने के पीछे प्रमुख तर्क यह है कि प्रतिदर्श में शामिल रहे जिन भी व्यक्तियों ने 'शिक्षा के इस खास स्तर' के समकक्ष या ऊपर तक की योग्यता अर्जित की, उन व्यक्तियों में, (अपने पूर्व पीढ़ीगत समुदाय से) एक खास तरह का तुलनात्मक बदलाव / परिवर्तन स्पष्ट तौर पर दर्शित होता है। इस सन्दर्भ में प्रतिदर्शों से हुई बातचीत में यह मुद्दा प्रमुख तौर से उभर कर सामने आया है कि राज्य (सरकार) द्वारा प्रदत्त सुविधाओं (रोजगार, आरक्षण आदि से सम्बन्धित) का लाभ व्यक्ति किसी खास स्तर की 'शिक्षायी स्थिति' या 'स्तर' के बाद ही प्राप्त कर सकता है। जिन व्यक्तियों के पास यह खास स्थिति / स्तर नहीं होता वे इन सब सुविधाओं से प्रायः वंचित ही रहते हैं। इन सुविधाओं को प्राप्त कर लेने के बाद ही व्यक्ति/समुदाय की स्थिति में एक सापेक्ष एवं सकारात्मक बदलाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो पाता है। शोधार्थी ने भी अपने इस अध्ययन में इस तथ्य को पाया है।

संदर्भ

अहीर, डी.डी. (1990), 'द *लेजेसी आफ डा. अम्बेडकर,* बी.आर. पब्लिकेशन, दिल्ली

अम्बेडकर, बी.आर. (1948), द *अनटचेबल,* अमृत पब्लिकेशन, दिल्ली

— (1943), मि. गांधी एवं इमंसीपेशन आफ द अनटचेबल, ठाकर, बम्बई

अटल, वाई. (1968), 'द चेंजिंग फ्रंटियर्स आफ कास्ट' नेशनल पब्लिकेशन, दिल्ली

बेंडिक्स एवं लिपसैट (सं.) (1960), 'क्लास स्टेट्स एंड पावर' द फ्री प्रैस, लन्दन

बेंडिक्स एवं लिपसैट (सं.) (1959), 'सोशल माबिलिटी इन इन्डस्ट्रियल सोशायटी', बर्कले : युनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रैस

बेरमैन गेराल्ड डी. (1997) कास्ट एंड अदर इन्क्वालिटीज : एस्से इन्क्वालिटीज, मनोहर पब्लिकेशन, दिल्ली

बेटैले, ए. (1966) कास्ट एंड अदर इनइक्वाटीज, मेरठ फाल्कलोर इंस्टीट्यूट

— (1967) 'द फ्यूचर आफ द बैक्वार्ड क्लासेज : द कम्पेटिंग डिमांड आफ स्टेट्स एंड पावर इन फिलिप मेशन (सं.) इंडिया एंड साइक्लोन : युनिटी एंड डाइवरसिटी आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, लन्दन

— (1969), कास्ट्स : ओल्ड एंड न्यू, एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई

— (1969), इंट्रोडक्शन एंड डेक्लाइन आफ सोशल इन्इक्वालिटी, इन ए. बेटैले (सं.) सोशल इनइक्वालिटी, पैन्गुइन, पीपी 362-81

भट्ट, अनिल (1975) कास्ट, क्लास एंड पॉलिटिक्स : एन इंपीरिकल प्रोफाइल आफ सोशल स्ट्राटिफिकेशन इन माडर्न इंडिया, मनोहर बुक सर्विस, नई दिल्ली

बुच एम.बी. (1987)'ए सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, III, IV, V सैन्टर फार एडवांस स्टडी इन एजुकेशन, बड़ौदा

सैन्सस आफ इंडिया रिपोर्ट 1971, 1981, 1991, 2001 भारत सरकार, दिल्ली

चानना करूना, (1993) 'एसेसिंग हायर एजुकेशन : द डायलेमा आफ स्कूलिंग वुमन, मिनोरिटी सैड्यूल कास्ट एंड सैड्यूल ट्राइब्स इन कन्टमपरेरी इंडिया' इन समा चिटनिस एंड फिलिप जी. अल्टावेच (सं.) हायर एजुकेशन रिर्फोम इन इंडिया

चंद्रा, आर. (2000), (सं.), 'डा. अम्बेडकर साइंस एंड सोसायटी', श्री पब्लिर्सस, दिल्ली

दमले, वाई.बी. (1968) 'रिफ्रैन्स ग्रुप थिओरी विद रिगार्ड टू मोबिलिटी इन कास्ट', इन जेम्स सिल्बर्ग (सं.) सोशल मोबिलिटी कास्ट सिस्टम इन इंडिया, द हेग मौटन

देसाई ए.आर. (1975) 'स्टेट आफ सोसाइटी इन इंडिया' पापुलर बम्बई

देरिदा जे. (1976) 'ओएस-ग्रामाटोलोजी जान हापकिन्स यूर्निवसिटी प्रैस, बल्टीमोर

देरिदा जे. (1978) 'राइटिंग एंड डिफरैंसेज' यूनिवर्सिटी आफ शिकागो

डमोंट लुइस (1970) 'होमो - हिराटीकस' द कास्ट सिस्टम एंड इट्स इम्पलीकेशन ओ यू पी, नई दिल्ली

डरखेम, ई. (1956) एजुकेशन एंड सोसियोलॉजी, द फ्री प्रैस, गलैन्को

फिशर एफ.बी. (1920) 'टचिंग द अनटचेबल : इंडियाज साइलैंट रिबोल्यूशन,' मेकमिलन पब्लिशर्स, न्यूयार्क

फ्री मैन, जे.एम. (1979), 'अनटचेबल : इन इंडिया लाइफ हिस्ट्री स्टैनफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, स्टैनफोर्ड सी.ए.

जी. हांगो (2005), अनटचेबल सिटीजन : दलित मूवमैंट एंड डेमोक्राइटेजेशन इन तमिलनाडु' सांग, नई दिल्ली

गांधी, एम.के. (1964), 'कास्ट मस्ट गो एंड सिन आफ अनटचेबलिटी' (आर.के. प्रभु द्वारा संशोधित) नवजीवन, अहमदाबाद

गंग्रेड के. डी. (1975) सोशल मोबिलिटी इन इंडिया : ए स्टडी आफ डिप्रैस्ट क्लास : मैन इन इंडिया 55(3) : 248–72

ग्लास डी. वी. (सं.) (1967) सोशल मोबिलिटी इन ब्रिटेन' रूटलेज एंड केजन पाल, लन्दन

गुप्ता डी., (2000) इंटरोगेटिंग कास्ट : अन्डरस्टैडिंग हेरारची इन डिफरेंस इन इंडिया सोसायटी, पैन्गुइन पब्लिशर्स, दिल्ली

गुरु जी. (1997) दलित कल्चर मूवमेंट एंड डायलैक्टिक आफ दलित पॉलिटिक इन महाराष्ट्र, विकास अध्ययन केन्द्र, मुंबई

होमैंन्स जी.सी. (1962) 'सैंटीमेंट एंड एक्टिीविटी : एस्से इन सोशल साईस रूटलेज एंड केगन पाल, लन्दन

लेह के. (2003), बफैलो नेशनलिज्म : ए क्रिटिक आफ स्प्रीचुअल नेशनलिज्म, समया पब्लिकेशन, नई दिल्ली

कर्व इरावती (1965) 'किनशिप आर्गेनाइजेशन इन इंडिया', बंबई, एशिया

कीर डी. (1987), 'डा. अम्बेडकर : लाइफ एंड मिशन' डी.के. पब्लिशर्स दिल्ली

लाल, एस. (1997) फ्रौम हायर कास्ट टू लोअर कास्ट : द प्रोसेस आफ अस्पृश्याकरण एंड द माइथ आफ संस्कृतिजेशन, रावत पब्लिशर्स, जयपुर

लिमेबल, एस. (2004) टूआर्ड एन एसथेटिक आफ दलित लिटरेचर : हिस्ट्री कन्ट्रोवर्सी एंड कंसीडरेशन्स ओरियन्ट लौंगमैन, नई दिल्ली

लिंच, ओ.एम. (1969) 'द पालिटिक्स आफ अनटचेबलिटी सोशल चेंज इन ए सिटी आफ इंडिया, सी यू पी, न्यूयार्क

मजूमदार, डी.एन. एंड मदान, टी.एन. (1957) एन इंट्रोडक्शन टू सोशल अन्थ्रोपोलोजी, एशिया पब्लिकेशन, बम्बई

नमविशन, गीता बी. एंड सेदवाल, मोना (2002) 'एजूकेशन फार आल : द सिचुवेशन आफ दलित चिल्ड्रन इन इंडिया' आर गोविंदा (सं.) इंडिया एजुकेशन रिपोर्ट ए प्रोफाइल आफ बेसिक एजुकेशन आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली

पी. फ्रेरे (1968) पेडागोगी आफ द अप्रैस्ड हारमौन्ड वर्थ पैन्गुइन

पी. फ्रेरे (1968) पेडागोगी आफ द फ्रीडम, आक्सफोर्ड रोमैन एंड लिटिल फील्ड पब्लिशर्स

पाइ, सुधा (2002, दलित एजरशन एंड द अनफिनिस्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन : द बहुजन समाज पार्टी इन उत्तर प्रदेश, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली

पांडे, पी.एन, (1988), 'एजुकेशन एंड सोशल मोबिलिटी अमंग सिड्यूल कास्ट', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली

पंडित, अमीचंद (1959) पुनः मुद्रण वाल्मीकि प्रकाश, (हिन्दी में)

प्रसाद, वी. (2000) 'अनटचेबल फ्रीडम : ए सोशल हिस्ट्र आफ ए दलित हिस्ट्री'

रामचंद्रन, वी. (2000), 'जेंडर एंड सोशल इक्विटी इन प्राइमरी एजुकेशन', द यूरोपियन कमीशन रिपोर्ट, नई दिल्ली

आर. गीता, (2005), इंडिया स्टींकिंग : मैनुअल स्केवैन्जर्स इन आन्ध्र प्रदेश एंड देअर वर्क', नवयाना पब्लिशिंग, चेन्नै

राम, नंदू (1986), 'सिड्यूल कास्ट : सोशल स्ट्राटिफिकेशन एंड सोर्श आफ मोबिलिटी इन अर्बन इंडिया', इन के.एल. शर्मा (सं.) सोशल स्ट्राटिफिकेशन इन इंडिया, मनोहर, नई दिल्ली

रिपोर्ट (1969), रिपोर्ट आफ द कमिटी आन अनटचेबलिटी, इकोनोमिक एंड एजुकेशनल डवलपमेंट आफ द सिड्यूल कास्ट एंड कनैक्टेड डाक्युमेंट, नई दिल्ली, भारत सरकार

सचिदानंद, (1977) 'द हरिजन इलाइट', नई दिल्ली

शाह, जी. (2001), (सं.) 'दलित आइडैंटिटी एंड पॉलिटक्स : कल्चर आर्डिनेशन एंड द दलित चैलेंज', सेज पब्लिशर्स, नई दिल्ली

सिल्वरवर्ग, जेम्स (सं.) (1968), 'सोशल मोबिलिटी इन द कास्ट सिस्टम इन इंडिया', द हॉग, मौटन

सिंह, योगेन्द्र (1977), 'सोशल स्ट्राटिफिकेशन एंड चेंज इन इंडिया, मनोहर, नई दिल्ली

सोरोकिन, पी.ए. (1959), 'सोशल एंड कल्चरल मोबिलिटी', द फ्री प्रैस, ग्लैंको

विद्यार्थी, एल.पी. (1997), 'हरिजन टूडे' सोशियोलॉजिकल, इकोनोमिक, पॉलिटिकल, रिलेशन एंड कल्चर एनालाइसिस', क्लासिकल पब्लिकेशन, नई दिल्ली

वेबर, माक्स (1961), 'फ्रौम मैक्स वेबर : एस्से इन सोशियोलॉजी' (एच.एच. ग्राथ और सी. डब्ल्यू. मिल्स द्वारा अनुवाद) रूटलेज और केगन पॉल

वेबस्टार, जॉन सी.बी. (1999), 'हू इज दलित?' एस.एम. माइकल (सं.) दलित इन मार्डन इंडिया : विजन एंड वैल्यू' विस्तार पब्लिकेशन्स, दिल्ली

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

गैट्स समझौता और भारत में उच्च शिक्षा

हरेश पाण्डेय*

शिक्षा ज्ञान का अमूल्य अस्त्र है एवं अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जिससे सभ्यताएं बनती हैं, संस्कृतियां परवान चढ़ती हैं एवं इतिहास लिखे जाते हैं। उच्च शिक्षा से समुदाय एवं राष्ट्रशक्ति सम्पन्न और लोकतंत्र मजबूत होता है जिससे मानवीय पूंजी पर आधारित विकास गतिमान होता है तथा इससे शक्ति, सद्भव और सामाजिक न्याय को बल मिलता है।

सेवा में व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट्स)

यह सर्वविदित हे कि सितम्बर 1986 में दक्षिण अफ्रीका के एक देश उरूगवे के एक शहर पुन्य डी इस्टे में प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता नामक एक संस्थान जो कि 1974 में स्थापित किया गया था, में एक ऐतिहासिक सम्मेलन का आयोजन हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के इतिहास में यह एक बहुत बड़ा एवं जटिल समझौता बना। इसमें किये गये निर्णय पर लगभग 26 हजार पृष्ठ का दस्तावेज तैयार हुआ। इसमें विश्व व्यापार संगठन को स्थापित करने का निर्णय लिया गया जो समस्त सदस्य देशों में विश्व स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (वस्तुओं तथा प्रशुल्क) को बढ़ावा देगा। इसलिए 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन अस्तित्व में आया परन्तु गैट्स के तीन महत्वपूर्ण क्षेत्र (1) सेवाएं (2) **TRIPS** तथा (3) **TRIMS**, इससे अछूता रह गया। परन्तु उरूगवे समझौते में ही सेवा में व्यापार के लिए एक अलग संगठन स्थापित करने का निर्णय लिया गया था जो 1996 में सेवा में व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट्स) के रूप में अस्तित्व में आया। उरूगवे के दौरान विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों ने सेवा क्षेत्र वर्गीकरण अनुसूची जिसे हम डब्ल्यू/120 के नाम से सामान्यतः जानते हैं, यूनाईटेड नेशन्स सेंट्रल प्रोडक्ट वर्गीकरण (यू.एन.सी.पी.सी.) के आधार पर पहले ही

* अध्यापक, राजकीय वरिष्ठ बाल माध्यमिक विद्यालय, ''ए'' ब्लॉक, जहाँगीरपुरी, दिल्ली-33

तैयार कर लिए थे। इस वर्गीकरण में 161 सेवा क्रियाएं शामिल की गई हैं जिसे 12 वृहद समूहों में वर्गीकृत किया गया है जो निम्नलिखित हैं: (1) व्यापार सेवाएं, (2) संचार सेवाएं, (3) विनिर्माण एवं संबंधित इंजीनियरिंग सेवाएं, (4) वितरण सेवाएं, (5) शिक्षा सेवाएं, (6) पर्यावरणीय सेवाएं, (7) वित्त सेवाएं, (8) स्वास्थ्य संबंधी तथा सामाजिक सेवाएं (9) पर्यटन एवं यात्रा संबंधी सेवाएं, (10) मनोरंजन, सांस्कृतिक एवं खेल सेवाएं (ऑडियो विजुअल सेवाओं को छोड़कर) (11) यातायात सेवाएं (12) अन्य सेवाएं जो उपरोक्त में शामिल नहीं है। फिर इन्हें भी अनेक उपवर्गों में बांटा गया है। (दास, 2006)

उदारीकरण के इस दौर में विश्व स्तर पर गैट्स (जो 44 सदस्य देशों वाली शक्तिशाली संस्था डब्ल्यू टी ओ द्वारा प्रशासित किया जाता है), एक ऐसी संस्था है जो वस्तुओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के वजाय सेवाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने पर बल देता है तथा बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था की ओर व्यवस्थित तथा प्रगतिशील स्वतंत्र सेवा व्यापार की वकालत करता है। गैट्स एक ऐसा बहुपक्षीय नियमों एवं कानूनों का एक समुच्चय है जो सेवाओं के स्वतंत्र व्यापार में आने वाले तथा पहले से विद्यमान प्रतिबंधों को धीरे-धीरे समाप्त करके उदारीकृत व्यापार का संवर्धन करता है।

गैट्स की संरचना को चार समूहों में बांटा गया है :

(i) इसका प्रथम भाग एक ऐसा सामान्य व्यवस्थाओं, सिद्धांतों एवं नियमों का समुच्चय है जो उन सभी मुख्य कारकों पर लागू होता है जो सेवा में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करते हैं।

(ii) इसका दूसरा भाग एक विशिष्ट वचनों एवं वादाओं का समुच्चय है जो उन सेवा क्षेत्रों एवं उप सेवा क्षेत्रों पर लागू होता है जिसे डब्ल्यू टी ओ (विश्व व्यापार संगठन) के सदस्य देशों ने गैट्स अनुसूची में शामिल किया है।

(iii) तीसरा भाग समय-समय पर लिए जाने वाले ऐसे समझौतों का है जो सेवा में व्यापार के प्रगतिशील उदारीकरण के उद्देश्य को पूरा करने में मदद करते हैं।

(iv) चौथा और अंतिम भाग ऐसे विशिष्ट क्षेत्रों व मंत्री स्तरीय निर्णयों का एक परिशिष्ट है जो समझौतों को लागू करने के लिए आवश्यक है।

समस्त सेवाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को गैट्स ने अपने अनुच्छेद 1.2 में चार तरीकों (मोड) से विभाजित किया है जिसे हम आपूर्ति के तरीके कहते हैं ये निम्नलिखित हैं :

1. **विदेशी सेवा आपूर्ति (क्रॉस बार्डर सप्लाई)** – इसमें सेवा आपूर्तिकर्त्ता तथा उपभोक्ता के भौतिक उपस्थिति के बिना देश के सीमा के पार सेवा आपूर्ति की जाती है जिसका ज्वलंत उदाहरण बी पी ओ तथा टेलीकॉम नेटवर्क है।
2. **विदेशी उपभोग (कन्जम्पसन एब्राड)** – इसके अंतर्गत सेवा उपभोक्ताओं का आपूर्तिकर्त्ता वाले देश के भौगोलिक सीमा में भौतिक रूप से आवागमन होता है। जैसे – पर्यटन के संदर्भ में।
3. **व्यापारिक प्रतिष्ठान (कर्मशियल प्रजेन्स)** – इसमें सेवाओं के आपूर्तिकर्त्ता वाले देश का अन्य देशों के भौगोलिक सीमा में भौतिक रूप से कर्मशियल प्रजेन्स होता है जो कार्यालयों, शाखाओं, अनुषांगिक संस्थाओं, संयुक्त उद्यमों, साझेदारी आदि के द्वारा सेवाओं का आदान-प्रदान किया जाता है। इसका मुख्य उदाहरण- सेवा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ डी आई) है।
4. **मानव संसाधनों का आवागमन (मुवमेंट ऑफ नेचुरल परसन)** – इसमें अस्थायी रूप में सेवा आपूर्तिकर्त्ता अपने व्यक्तिगत क्षमता या मोड-3 में उल्लेखित उदाहरणों के लिए किसी भाग के रूप में अन्य देशों में सेवा प्रदान करने के लिए आवागमन करता है।

विश्व व्यापार संगठन के एक सांख्यिकी आकलन के अनुसार विश्व में कुल व्यावसायिक सेवाओं का विभिन्न आपूर्ति के तरीकों में अनुपात निम्नलिखित है : मोड-1 में 35 प्रतिशत, मोड-2 में 10 से 15 प्रतिशत, मोड-3 में 50 प्रतिशत, मोड-4 में 1 से 2 प्रतिशत है। (दास-2006)

गैट्स की एक मुख्य विशेषता यह है कि यह राष्ट्रों को व्यक्तिगत रूप से इस बात के लिए स्वतंत्र कर देता है कि जिस सीमा तक वह राष्ट्र चाहे उस सीमा तक स्वतंत्र विदेशी व्यापार के लिए अपने सेवा क्षेत्र को खोल सकता है।

गैट्स के अंतर्गत शिक्षा

गैट्स के अंतर्गत आनेवाले 12 सेवाओं के वृहद समूहों में से शिक्षा एक सेवा समूह है।

शिक्षा सेवा समूह को पुनः पांच उप वर्गों में बांटा गया है :

(1) प्राथमिक शिक्षा सेवाएं (2) माध्यमिक शिक्षा सेवाएं (3) उच्चतर शिक्षा सेवाएं (4) प्रौढ़ शिक्षा तथा (5) अन्य शिक्षा सेवाएं – जिसमें भाषा परीक्षण, छात्रों की भर्ती तथा गुणवत्ता जांच कार्यक्रम (QAP) शामिल हैं।

अगर हम पूरे विश्व व्यापार संगठन के 144 सदस्य देशों को देखें तो उसमें केवल 44 देश ही शिक्षा सेवाओं में व्यापार पर सहमत हुए हैं और उनमें से भी केवल 21 देशों ने उच्चतर शिक्षा पर अपनी सहमति जताई है। इस प्रकार हम पाते हैं कि सभी सेवा क्षेत्र में व्यापार में शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर सहमति सबसे से कम है।

आस्ट्रेलिया ने शिक्षा के कुछ पहलुओं पर स्वतंत्र व्यापार करने की अपनी सहमति दी है। मार्च 2002 तक 21 देशों में से केवल चार देशों (यूएसए, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया और जापान) ने उच्चतर शिक्षा में स्वतंत्र व्यापार पर अपनी सहमति गैट्स को दे दी थी। (रमेश चन्द्र–2005)

डब्ल्यू टी ओ का अपने सदस्यों देशों के ऊपर दबाव बढ़ता जा रहा है कि सदस्य देश अपने–अपने घरेलू सीमा में सेवा में विदेशी व्यापार में बढ़ती हुई उदारीकरण को सुनिश्चित करें।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने उच्चतर शिक्षा को पहले से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण रूपी चल रही आंधी उच्चतर शिक्षा में सुधार को आवश्यक बना दिया। जैसा कि हम सभी जानते हैं और महसूस भी करते हैं कि सभी राष्ट्रों में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था तथा ज्ञान से जुड़ी समाज की संरचना में उच्चतर शिक्षा एक आधारभूत भूमिका का निर्वाह करता है। यह देश की प्रगति एवं समृद्धि का सूचक है। उच्च शिक्षा प्रणाली के निर्गतों के द्वारा समाज में आधुनिकता का प्रचलन होता है। यह उत्पादन के साधनों की उत्पादकता बढ़ाने में अकथनीय भूमिका अदा करता है। उच्चतर शिक्षा सतत् मानवीय विकास एवं आर्थिक विकास हेतु तथा इनकी गति में तेजी लाने हेतु आवश्यक है। इसलिए यह कहना अनुचित होगा कि यह एक विलासिता की वस्तु है और इसे केवल धनी देश ही वहन कर सकता है। बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि निरपेक्ष रूप से यह सभी देशों के लिए आवश्यक है विशिष्ट रूप से गरीब राष्ट्रों के लिए अति आवश्यक हैं।

वैश्वीकरण का बढ़ता हुआ दबाव तथा डब्ल्यु टी ओ द्वारा सदस्यों देशों पर कसता हुआ शिकंजा इस बात का प्रतीक है कि अब हमें पर्याप्त मात्रा में संसाधनों का हस्तानांतरण तृतीयक शिक्षा क्षेत्र (उच्चतर शिक्षा) में करना अति आवश्यक है। साथ ही हमें उच्चतर शिक्षा के विभिन्न पहलुओं विशिष्टत: गुणवत्ता एवं प्रासंगिकता के लिए व्यक्तिगत रूप से उच्चतर शिक्षण संस्थाओं तथा समष्टि रूप से सम्पूर्ण उच्चतर शिक्षण प्रणाली में सुधार लाना आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ही एक मुख्य साधन है जिसके द्वारा वैश्वीकरण लाया जा सकता है। जहां एक ओर इससे विश्व अर्थव्यवस्था के कुशल प्रबंध समाकलन लाया जा सकता है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक मितव्ययिताओं तथा विदेशी निवेश बढ़ाया जा सकता है, रोजगार के अवसरों का सृजन किया जा सकता है तथा देश विशेष अपने उच्चतर शिक्षा प्रणाली के निर्गतों से तथा उनकी कुशलता एवं दक्षता तथा ज्ञान से लाभान्वित हो सकता है।

आज की शिक्षा विशिष्टत: उच्चतर शिक्षा एक प्रकार का ग्लोबल उद्योग है। दिन प्रतिदिन शिक्षा विशिष्टत: उच्च शिक्षा की मांग बढ़ती जा रही है। यह माना जा सकता है कि यह निश्चिय ही छात्रों के सामाजिक और आर्थिक स्तर को उंचा उठायेगा। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर छात्रों का प्रवाह विदेशी विनियम का एक निश्चिंत एवं महत्वपूर्ण स्रोत है। 1960-70 के बीच अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर छात्रों के प्रवाह में औसत वार्षिक वृद्धि दर लगभग 6 प्रतिशत रही, जबकि 1970-80 के बीच यह दर 6 प्रतिशत थी (मजोरल और साउटर-2001)। इसमें कोई शक नहीं कि 1980 के दशक में वृद्धि दर में कमी आयी है, परंतु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय छात्रों का प्रवाह विदेश विनियम अर्जित करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

अगर हम शिक्षा में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कुछ तथ्यों पर ध्यान दें तो निम्न बातें सामने आयेंगी :

(1) विश्व में अमेरीका शिक्षा सेवाओं का सबसे बड़ा निर्यातक देश है। 1995-96 में विभिन्न देशों से लगभग 4.5 लाख विद्यार्थी यहां शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, जबकि यू.के. में 1.99 लाख, जर्मनी 1.65 लाख तथा फ्रांस में 1.39 लाख थे।

(2) इस अवधि में यू.एस.ए., यू.के. तथा आस्ट्रेलिया तीनों देशों द्वारा एशिया तथा पैसिफिक को लगभग 27 बिलियन अमेरीकी डालर मूल्य का उच्चतर

शिक्षा सेवाओं का निर्यात किया गया।

(3) लगभग 50 हजार भारतीय छात्र उच्चतर शिक्षा में अध्ययन के लिए विदेशी उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में नामांकित हैं।

(4) अनेक देशों जैसे यू.एस.ए., फ्रांस, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया भारतीय एजेंसियों के साथ मिलकर फ्रैंचायजी या दूरस्थ या पत्राचार के द्वारा उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में भारत में प्रवेश कर रहीं हैं। (जोसेफिन, 2003)

विदेशी विश्वद्यिालयों में उच्च शिक्षा हासिल करने की इच्छा रखने वाले युवाओं के पसंदीदा देशों की बात करें तो ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर के अलावा अमेरीका का नाम भी काफी सम्मान से लिया जाता है। अमेरीका से उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले युवाओं को ग्लोबल मार्केट में भरपूर तरज़ीह दी जाती है, और यहां मिलने वाली डिग्री को जॉब गारंटी के तौर पर देखा जाता है। आप यहां अपनी रूचि एवं मार्केट के नाम के अनुरूप पाठ्यक्रम का चुनाव कर सकते हैं। यहीं कारण है, जिसके चलते बीते पांच सालों में न केवल जॉब, बल्कि शिक्षा के सिलसिले में भारी तादाद में भारतीय छात्रों ने अमेरीका की ओर रुख किया है। उच्चतर शिक्षा, अमेरीका तथा जर्मनी, दोनों देशों में पांचवें नम्बर का सबसे बड़ा निर्यातक सेवा क्षेत्र है।

अनेक वर्षों से भारत में शिक्षा को मस्तिष्क विकास, मूल्यों का सृजन एवं उसे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तानान्तरण करने तथा चरित्र निर्माण का एक साधन एवं क्रिया समझा जाता रहा है। यद्यपि उच्च शिक्षा हमारा आधारभूत अधिकार है या मौलिक अधिकार नहीं है, तथापि उसे सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए आवश्यक माना गया है। अतिकुशल आधारभूत तथा मानवीय संसाधनों के साथ भारतीय उच्चतर शिक्षा प्रणाली विश्व की दूसरी नंबर की सबसे बड़ी उच्चतर प्रणाली है।

गैट्स और भारत

भारत गैट्स, डब्ल्यू टी ओ तथा गैट्स के संस्थापक सदस्य देशों में से एक है। भारत, वर्तमान में गैट्स के अन्तर्गत उदारीकृत सेवा व्यापार का एक उगता हुआ तारा है। गैट्स 2000 समझौता जो दोहा (डीआर) में 24 जुलाई 2000 को आयोजित किया गया था, भारत ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। 5 विकासशील देशों, चीन, हांगकांग, रिपब्लिक

ऑफ कोरिया, भारत तथा सिंगापुर वर्ष 2004 तक विश्व के टॉप 20 सेवा निर्यातक देशों में आ गये। (दास–2006)

यू आर में भारत सेवा में व्यापार का एक प्रमुख विपक्षी देश था। परंतु डी आर में एक प्रमुख हिमायती बन गया। और भारत ने मोड–1 तथा मोड–4 के लिए अपनी सहमति दी।

विश्व व्यापार संगठन ने अपने सदस्य देशों को 'रिवाइज्ड ऑफर' (संशोधित सेवा सूची) अनुसूची बनाकर 31 जुलाई 2006 तक प्रस्तुत करने की एक सीमा रेखा खींच दी। भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय रिवाइज्ड ऑफर तैयार किया। भारत ने प्राथमिक तौर पर इसे संचार, वित्त, उर्जा, तकनीकी, परामर्श सेवाएं, रिटेल, मैनेजमेंट, कोरियर, विनिर्माण, तथा उससे संबंधित अभियंता सेवाएं, मैरीटिम यातायात सेवाएं आदि में स्वतंत्र व्यापार के लिए गैट्स को अपनी सहमति प्रस्तुत कर दी है।

परन्तु कानूनी सेवाएं, रिटेलिंग सेवाएं, शिक्षा तथा ऑडियो विजुअल सेवाओं में स्वतंत्र एवं उदारीकृत विदेशी व्यापार भारत के लिए कठिन है।

गैट्स समझौता एवं भारत में उच्चतर शिक्षा सेवाएं

उरुगवे समझौते के दौरान भारत ने गैट्स समझौता के अंतर्गत उच्चतर शिक्षा सेवा में विदेशी साझेदारी तथा शिक्षा में व्यापार आदि मुद्दों पर कोई बहुपक्षीय समझौता नहीं की। परंतु भारत ने अपने 'रिवाइज्ड ऑफर' में उच्चतर शिक्षा सेवाओं (सीपीसी 923) को शामिल कर लिया। वर्तमान में भारत शिक्षा सेवाओं का व्यापार गैट्स के निम्नलिखित चार आपूर्ति के तरीकों के द्वारा कर रहा है। (जोसेफिन–2003)

1. विदेशों में शिक्षा सेवा : आधुनिक समय में, भारतीय विश्वविद्यालयों के द्वारा विभिन्न पाठ्यक्रमों में पत्राचार या दूरस्थ शिक्षा पद्धति द्वारा डिग्री और डिप्लोमा सर्टिफिकेट विदेशी छात्रों के दिये जा रहे हैं। इस संदर्भ में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नो) ने एक नीति का निर्माण किया है और अकादमिक एवं व्यावसायिक, दोनों क्षेत्रों में विभिन्न पाठ्यक्रमों का संचालन कर रहा है। इसी प्रकार कुछ विदेशी उच्च शिक्षण संस्थाओं के द्वारा भारतीय छात्रो को भी विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक एवं तकनीकी पाठ्यक्रमों में डिग्री एवं डिप्लोमा दिए जा रहे हैं।

2. विदेशों में शिक्षा सेवा का उपभोग : प्राचीन काल में भारतीय विश्वविद्यालय जैसे नालन्दा, तक्षशीला आदि में चीन, तिब्बत तथा कोरिया के छात्र आकर शिक्षा ग्रहण करते थे। वर्तमान समय में भी भारतीय विश्वविद्यालयों जैसे जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी तथा दिल्ली विश्वविद्यालय आदि में विभिन्न देशों के छात्र अध्ययन कर रहे हैं। इसी प्रकार भारतीय विद्यार्थी भी विभिन्न पश्चिमी देशों जैसे- अमरीका तथा थाइलैंड आदि में जाकर उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं तथा अनुसंधान में लगे हुए हैं। सन 2001 में कुल 10 लाख भारतीय छात्र विदेश में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे जिनमें से केवल अमेरिका में 54,664 छात्र थे। (पावर-2002) परन्तु केवल 7791 विदेशी छात्र जो विशिष्ट रूप से पश्चिमी एशिया तथा दक्षिण अफ्रीका के थे, भारत में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे (भाल-2002)।

इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट आफ एजुकेशन, न्यूयार्क (2002) द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट में अमरीका के विभिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले भारतीय छात्रों की संख्या 63000 थी जो चीन (6700) के बाद दूसरा देश है।

3. व्यापारिक शिक्षा परिसर केंद्र तथा फ्रेंचाइजी : आज अनेक विदेशी विश्वविद्यालय अपने कैम्पस भारत में स्थापित कर रहे हैं। अनेक उच्चतर शैक्षिक संस्थान फ्रेंचाइजी द्वारा अपने पाठ्यक्रमों को मूर्त रूप दे रहे हैं। वर्ष 2000 के एक सर्वेक्षण के अनुसार पांच देशों के 27 शिक्षा सेवा प्रबंधकों एवं शिक्षा प्रतिष्ठानों द्वारा (जिसमें से इंगलैंड के 10, अकरीका के 12) फ्रेंचाइजी के माध्यम से मास्टर लेवल तथा व्यावसायिक क्षेत्र जैसे इंजीनियरिंग एवं प्रबंधन पर विभिन्न कोर्सेज चलाये जा रहे है। परंतु विभिन्न भारतीय मानद विश्वविद्यालयों को विदेशों में अपने कैम्पस खोलने की अनुमति प्राप्त हो चुकी है। बिट्स पिलानी ने दुबई में, बिट ऑफ रांची ने ओमान में, दी मनिपाल एजुकेशनल एंड एक मेडिकल ग्रुप ने नेपाल में तथा सैफल, हैदराबाद ने क्रिगीजस्तान में इंग्लिस लैंग्वेज टिचिंग प्रोग्राम प्रारंभ करके लाभ उठा रहे हैं।

4. मानव संसाधनों का आवागमन : भारतीय विश्वविद्यालयों के संकाय सदस्य तथा अनुसंधानकर्ता विभिन्न विकसित देशों में जाकर अपने उद्देश्यों को पूरा कर रहे हैं। खासकर व्यक्तिगत रूप से रोजगार प्राप्त कर रहे हैं। इसे 'प्रतिभा पलायन' कहते हैं। परंतु इस प्रकार के प्रवाह विदेशों से भारतीय उच्च शिक्षण संस्थाओं में बहुत कम है।

उच्चतर शिक्षा में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पक्ष में तर्क

इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्कें दिये जा सकते हैं :

1. इससे भारतीय विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के पाठ्यक्रमों का अध्ययन करने का अवसर मिलेगा। जैसा कि हम जानते हैं कि अमरीका, इंगलैंड, जर्मनी तथा आस्ट्रेलिया जैसे अनेक देशों में शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा का प्रचलन है। ऐसा भारत में भी संभव हो सकेगा।

2. भारत में उच्च शिक्षा मौलिक अधिकार नही है और न ही देश की सरकार इसे देने के लिए संवैधानिक रूप से वचनवद्ध है। ऐसी स्थिति में अगर विदेशी उच्च शिक्षण संस्थाएं भारत में संयुक्त उद्यमों, फ्रेंचाइजी आदि के द्वारा तकनीकी, प्रबंधन तथा प्रोफेशनल आदि पाठ्यक्रमों का संचालन करती हैं तो भारतीय विद्यार्थी भी उनके कुशल एवं प्रशिक्षित तथा आधुनिक दक्षता से लाभान्वित हो सकते हैं।

3. जब भारत में विदेशी उच्च शिक्षण संस्थाएं प्रवेश करेंगे तो भारतीय उच्च शिक्षण संस्थाओं से स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बढ़ेंगी। इससे उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होगा। विविधकरण बढ़ेगा। उत्पादकता में वृद्धि होगी।

4. भारत, जनसंख्या वृद्धि में चीन के बाद विश्व का दूसरा देश है। इस कारण भारत में उच्च शिक्षा की मांग लगातार बढ़ती जा रही है। इसमें कोई शक नहीं है कि विगत 58 वर्षों में भारत में उच्च शिक्षा में अद्वितीय वृद्धि हुई है। इसके बावजूद भी, उच्च शिक्षा की बढ़ती हुई घरेलू मांग की हम पूर्ण रूप से आपूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। शिक्षा में व्यापार, इस ओर एक सार्थक कदम साबित हो सकता है। 1990 के दशक में आर्थिक सुधारों का दौर शुरु हुआ, जिसमें लाइसेंसिंग, परमिट एवं कोटा (एल.पी.क्यू.) के स्थान पर उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण (एल.पी.जी.) को लाया गया। निजीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों (पीएसयू) पर पर्याप्त रूप से देखा जा सकता है। इसी संदर्भ में उच्च शिक्ष की निजीकरण की प्रक्रिया वैसे तो डॉ. टी.एम. पाई ने मनिपाल में बहुत पहले ही शुरु कर दी थी। परंतु, उच्च शिक्षा के संदर्भ में गठित डा. पुन्नैया कमिटी की संस्तुति, आदित्य-विडला रिपोर्ट आदि तथा भारत सरकार

पर बढ़ता हुआ आर्थिक संकट उच्च शिक्षा में निजीकरण की हवा को तेज कर दिया। गैट्स तथा वैश्वीकरण ने उच्च शिक्षा में विदेशी व्यापार शुरु करके आग में घी डालने का काम किया। इससे उच्च शिक्षण संस्थाओं की संख्या तथा विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

5. भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त करके विद्यार्थी या तो उच्चतर अध्ययन या अनुसंधान के लिए अन्य देशों में पलायन कर जाते हैं अथवा अच्छी नौकरी के तलाश में विदेश चले जाते हैं जिसे हम प्रतिभा पलायन की संज्ञा देते हैं। उच्च शिक्षा में व्यापार से अब इस पर रोक लग सकती है।

6. देश के आर्थिक विकास में सेवा क्षेत्र का योगदान सर्वाधिक है। यह नीचे की तालिका से स्पष्ट है।

विभिन्न क्षेत्रों का सकल घरेलू उत्पाद में अनुपात

वर्ष	कृषि एवं संबंधित क्रियाएं	उद्योग क्षेत्र	सेवा क्षेत्र
1970–71	46	16	38
1980–81	40	18	43
1990–91	32	22	46
2000–01	24	22	54

स्रोत : दास–2006

शिक्षा, सेवा क्षेत्र का एक मुख्य घटक है। इसमें विकास की काफी संभाव्य क्षमता विद्यमान है। इसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की पर्याप्त संभावना है। उच्च शिक्षा में व्यापार से विदेशी विनिमय प्राप्त हो सकेगा जो कि देश के प्रतिकूल भुगतान संतुलन को सुधारने में मददगार सिद्ध हो सकेगा।

7. देश का आर्थिक विकास अनेक आर्थिक कारकों पर निर्भर करता है जिसमें पूंजी एवं पूंजी निर्माण, बचत एवं निवेश, मानवीय पूंजी का आकार, पूंजी–उत्पाद अनुपात आदि। भारत में श्रम शक्ति पर्याप्त मात्रा में है। यदि हम मानव पूंजी का निर्माण करके आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उपयोग करें तो इससे प्रति श्रमिक

उत्पादकता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि होगी। अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग हो सकेगा। 'भारत धनी पर भारतीय गरीब' इस लोकोक्ति को बदल सकते हैं। मानवीय पूंजी का बढ़ता हुआ भाग आधुनिकीकरण को बढ़ावा देगा, नई-नई तकनीकों का अविष्कार हो सकेगा तथा नई तकनीकों को लागू कर सकेंगे। और अंतत: देश की आर्थिक विकास की गति में तेजी लायी जा सकेगी। परंतु मानवीय पूंजी का निर्माण उच्चतर शिक्षा, कुशलता, प्रशिक्षण एवं उत्तम स्वास्थ्य सुविधाओं पर निर्भय करता है। ये तीनों ही सेवा क्षेत्र के घटक हैं। अत: मानव पूंजी निर्माण हेतु उच्चतर शिक्षा में गुणात्मक एवं मात्रात्मक सुधार एवं वृद्धि के लिए व्यापार आवश्यक है।

8. भारत में बेरोजगारी एक ऐसी समस्या है जो लगातार बढ़ती जा रही है। इसमें कोई शक नहीं कि भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा प्रतिवर्ष रोजगार के नए-नए अवसर सृजित किये जाते हैं और किये जा रहे हैं परंतु यह भी सही है कि भारत में आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया जो 1950 के दशक में शुरु हुई, बेरोजगारी तथा गरीबी, इन दो समस्याओं का समाधान करने में असफल रही है।

अगर भारत में व्यावसायिक संरचना की बात करें तो प्राथमिक क्षेत्र में 1999-2000 के अवधि में 56.7 प्रतिशत, द्वितीयक क्षेत्र में 17.6 प्रतिशत तथा तृतीयक क्षेत्र में 25.7 प्रतिशत जनसंख्या कार्यरत थी। (दास-2006)

यहां सेवा क्षेत्र का दूसरा स्थान है। यदि उच्च शिक्षा में व्यापार को बढ़ावा देते हैं तो दूसरे तकनीकी, व्यावसायिक एवं प्रबंधकीय ज्ञान एवं कुशलता से लैस होकर भारतीय युवक अपने रोजगार के अवसर की तलाश करने के बजाय रोजगार के नये-नये अवसर सृजित कर सकते हैं। इससे बेरोजगारी तथा गरीबी जैसे असाध्य रोगों से छुटकारा मिल सकता है।

विपक्ष में तर्क

1. हम जानते हैं कि शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों की रक्षा करती है तथा एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी की ओर इन मूल्यों का हस्तानांतरण करती है। उच्च शिक्षा में व्यापार से इन मूल्यों पर खतरा नजर आता है।

2. हमें इस बात से इंकार नहीं करना चाहिए कि शिक्षा में व्यापार शिक्षा का वस्तुकरण है। अर्थात शिक्षा को एक बाजारीय वस्तु समझा जायेगा। जो व्यक्ति इस वस्तु का जितना अधिक कीमत देगा, वह उस वस्तु का उतना ही अधिक उपभोग करेगा। फिर हमें यह कहने में संकोच नहीं होगा कि उच्चतर शिक्षा एक विलासिता की वस्तु है। इससे केवल पूंजीपति एवं धनी वर्ग ही लाभान्वित होंगे। फिर उच्चतर शिक्षा में दाखिला पाना साधन विहीन छात्रों के लिए एक सपना हो जायेगा। यह सामाजिक न्याय की अवधारणा के विरूद्ध होगा।

3. उच्चतर शिक्षण संस्थाओं में दाखिला छात्रों की योग्यता पर न होकर फीस भुगतान करने की क्षमता के आधार पर होगा। इससे अनेक प्रतिभाएं कमजोर आर्थिक पहलू के कारण अपनी क्षमताओं का सही इस्तेमाल नहीं कर पाएंगी। इनमें अनेक प्रकार के कुण्ठा एवं अनैतिक विचार प्रस्फुटित होंगे। इसका परिणाम भयंकर हो सकता है। साथ ही देश अपने ऐसे प्रतिभावान युवाओं को खो देगा।

4. यह तो सर्वविदित है कि उद्योगपति मुनाफा कमाने में कोई कसर नहीं छोड़ते लेकिन बिड़ला–अम्बानी रिपोर्ट ने देश की उच्च शिक्षा को भी इसी दायरे में लाकर खड़ा कर दिया है। उच्च शिक्षा इन उद्योगपतियों को एक बाजार के रूप में दिखायी पड़ रहा है जहां शिक्षा को एक उत्पाद के रूप में बेचकर ये मुनाफा कमाना चाहते हैं। जहां उच्च शिक्षा की बहुत सी दुकानें देश के विभिन्न भागों में खुल चुकी हैं और इनके मालिक खुलेआम उच्च शिक्षा का व्यापार कर रहे हैं, पाश्चात्य संपन्न एवं विकसित देशों से उच्च शिक्षा के प्रारूप और ढांचों को उठाकर भारत के परिवेश में थोपना इन उद्योगपतियों के लिए फैशन बन गया। परन्तु ये इन संपन्न देशों की प्रबंध तकनीक एवं शोध नीति आदि को अपने उद्योगों में लागू से कतराते हैं। लेकिन वास्तविकता का जायजा लिए बिना उन प्रारुपों के केवल चंद पहलुओं को ये भारत की जनता पर थोपना चाहते हैं। (चौधरी–2006)

5. वास्तव में 'निजीकरण' शब्द की आड़ में उच्च शिक्षा का वाणिज्यीकरण इस उद्देश्य से किया जा रहा है जिससे कि उद्योगपति इस क्षेत्र में पूंजी का निवेश करके लाभ कमा सकें। 25 अप्रैल 2000 को मुकेश अम्बानी और आदित्य

बिड़ला द्वारा ''पालिसी फ्रेमवर्क फॉर रिफॉमर्स इन एजुकेशन'' नामक प्रतिवेदन प्रधानमंत्री को सौंपा गया। (चौबे एवं शुक्ला-2006) इसके मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं :

(i) उच्च शिक्षा स्व-वित्त-पोषित हो।

(ii) इसे नीजि क्षेत्र को सौंप दिया जाए।

(iii) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी जाए।

(iv) निजी विश्वविद्यालयों की स्थापना हेतु नियम बनाये जाएं।

(v) भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली का बाजारीकरण किया जाय, विश्वविद्यालयों के अनुदान समाप्त किये जाऐं। जिस प्रकार से वित्तीय संस्थाओं का बाजार में मूल्यांकन किया जाता है उसी आधार पर उच्च शैक्षिक संस्थाओं का भी किया जाय और जो संस्थाएं इसमें खरी नहीं उतरतीं उन्हें बंद किया जाए, छात्रों की फीस बढ़ा दी जाए आदि।

ये सिफारिशें मान ली गयीं तो उच्चतर शिक्षा के दरवाजे केवल गरीब छात्रों के लिए ही बन्द नहीं होंगे, अपितु मध्यम आय वर्ग के छात्र भी इससे हाथ धो बैठेंगे।

6. किसी भी विकासशील समाज में उच्च शिक्षा का उद्देश्य मात्र बाजार की मांग को पूरा करना नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो समाज में न तो विचार जन्मेंगे, न तर्क की कोई जगह होगी और न ही विचारधारा का कोई स्थान रहेगा। समस्त उच्च शिक्षा प्रणाली बाजार का गुलाम बनकर रह जायेगी। यह शिक्षा के नैतिक मूल्यों, हमारी संस्कृति और परम्परागत धरोहर पर एक आघात होगा।

7. आर्थिक वैश्वीकरण ने शैक्षणिक वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया है। आज विदेशी शैक्षिक संस्थाओं के साथ-साथ उनके पाठ्यक्रमों एवं सोचने की प्रक्रिया आदि का भी आयात हो रहा है। ये संस्थाएं एजेंट के रूप में आकर देशी संस्थाओं के साथ मिलकर पाठ्यक्रमों का संचालन करती हैं। इसे ट्विनिंग कहा जाता हैं। ये पत्राचार तथा दूरस्थ पद्धतियों के द्वारा कोर्सेज का संचालन करते हैं और मोटी रकम वसूलते हैं। अमेरिका एवं यूरोप की शिक्षा संस्थाएं महंगा पाठ्यक्रम चलाकर भारतीय छात्रों का शोषण कर रही हैं। नवीन आर्थिक नीति के कारण उच्च

शिक्षा के क्षेत्र में आऐ हुए इन परिवर्तनों में भारतीय समाज का आर्थिक शोषण हो रहा है।

शासन की नीतियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के लिए जहां डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, एल.एस. मुदलियर, डी.एस. कोठारी जैसे सुविख्यात शिक्षाविदों की सलाह ली जाती थी, आज यह काम उद्योगपतियों को सौंपा गया। यह प्रबुद्ध वर्ग के लिए चिन्ता का विषय है। वास्तव में सरकार शिक्षा को व्यापार मान चुकी है।

इन विभिन्न पहलुओं पर अगर भारत सरकार का नजरिया देखें तो वाणिज्य मंत्रालय तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय का उच्च शिक्षा को विदेशियों के लिए खोलने और एफडीआई किस सीमा तक सरकारी नियंत्रण में हो, आदि मुद्दों पर मतैक्य नहीं है। एक ओर जहां वाणिज्य मंत्रालय सेवा क्षेत्र में अधिक उदार वातावरण की वकालत कर रही है तथा विदेशी विश्वविद्यालयों को यू.जी.सी. के निगरानी में न रखने की बात कर रही है। वाणिज्य मंत्रालय को यह आशा है कि मोड-3 में छूट देने से भारत अधिक उदारीकृत विजा नियमन के लिए मोलभाव कर सकेगा तथा यू.एस.ए. एवं यू.ई. बाजारों में अधिक से अधिक प्रोफेशनल्स को कार्य करने की अनुमति प्राप्त कर सकेगा। दूसरी ओर मानव संसाधन विकास मंत्रालय, वाणिज्य मंत्रालय के उस प्रस्ताव को लेकर, जिसमें छात्रों की फीस माफी तथा प्रोफेशनल्स का वेतन, यू.जी.सी. की निगरानी के बाहर रखने की बात कही गई है, के सख्त विरोध में है। वाणिज्य मंत्रालय उच्चतर शिक्षा में 100 प्रतिशत एफडीआई के पक्ष में है तथा शिक्षा हेतु विदेशी प्रबंधकों के लिए विशिष्ट आर्थिक जोंस बनाने की राय दी है। परन्तु मा.सं.वि.मं. के मंत्री ऐसा करने के पक्ष में नहीं हैं। मा.सं.वि.मं. भारत द्वारा उच्च शिक्षा में गैट्स समझौता अगस्त 2005 में प्रस्तावित 'रिवाइज्ड ऑफर' पर अपनी सहमति को वापस लेना चाहती है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने भारत में विदेशी शिक्षण संस्थाओं के संचालन पर नियंत्रण के लिए एक बिल प्रस्तावित किया है। इसका शीर्षक ''दी फॉरेन एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन्स (रेगुलेशन आफ इन्ट्री ऑपरेशन मैंटिनेंस आफ क्वालिटी एंड प्रीवेंस आफ कमर्सियलाइजेशन) बिल-2005'' है। इसमें विदेशी शिक्षा प्रबंधकों के लिए एक उचित संवैधानिक फ्रेमवर्क तथा स्पष्ट नीति है। इस बिल का उद्देश्य भारत में विदेशी शिक्षा प्रबंधकों द्वारा संचालित शिक्षा के विभिन्न पहलुओं जैसे - प्रवेश प्रक्रिया, संचालन

तथा गुणवत्ता पर नियंत्रण, शिक्षा के व्यावसायीकरण पर प्रतिबंध से है। विदेशी शिक्षण संस्थाएं भारत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अंतर्गत मानद यूनिवर्सिटी के रूप में कार्य करेंगी। (दास–2006)

वैश्वीकरण अब कोई विकल्प नहीं रह गया है। यह एक वास्तविकता है। इसे हमें स्वीकार करना होगा। इस कारण आज हमारे सम्मुख सवाल यह है कि वैश्वीकरण की नीतियों को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तथा गैट्स अम्ब्रेला के अंतर्गत उच्च शिक्षा में व्यापार को किस प्रकार लाभदायी बनाया जाए कि सामाजिक हितों की रक्षा हो सके।

आधुनिकीकरण एवं वैश्वीकरण के इस दौर में हमें भी अपनी उच्च शिक्षा को सभी के लिए खोल देना चाहिए। आज विश्व के अनेक अर्थव्यवस्थाएं विकास के मार्ग पर काफी आगे बढ़ चुकी हैं। हैबलर ने ठीक ही कहा था कि ''अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विकास का इंजन है।'' यदि हमें उच्च शिक्षा में विकास, विविधीकरण, आधुनिकीकरण, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश चाहते हैं तो गैट्स अम्ब्रेला के अन्तर्गत तथा यू.जी.सी. के उचित मार्गदर्शन में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को उच्च शिक्षा में बढ़ावा देना होगा। पर बाजारीकरण के खतरों को अनदेखी न की जाए। राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देते हुए विभिन्न राष्ट्रों के साथ तालमेल बैठाने का प्रयास करना चाहिए तथा व्यापार के आकार एवं वैश्वीकरण के स्वरूप का निर्धारण करना चाहिए। तभी हम अपने घरेलू मांग को पूरा कर सकते हैं, प्रतिभा पलायन को रोक सकते हैं, सम्पूर्ण मानव शक्ति को मानव पूंजी में परिवर्तित करके देश के विकास की प्रक्रिया को गति दे सकते हैं। इतना ही नहीं भारतीय प्रतिभावान युवाओं को जॉब सीकर के बजाय जॉब डोनर बना सकते हैं। क्योंकि आज का युग 'सा विद्या या विमुक्तये' का नहीं है बल्कि 'सा विद्या या नियुक्तये' का है।

संदर्भ

चौबे, शैलेन्द्र एवं नरेन्द्र शुक्ल (2006) : *''भारत में आर्थिक सुधार: आवश्यकता, प्रभाव एवं सुधार''* अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रब्यूटर्स, दिल्ली

चौधरी, एम.पी. (2006) : *''भारत में उच्च शिक्षा और समस्याएं''* विक्रांत पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

जोसेफिन यजाली (2003), कम्पाइल्ड : *''ग्लोबलाइजेशन एंड चैलेन्ज फार एजुकेशन''* न्यूपा, नई दिल्ली

दास, कस्तुरी (2006) : *गैट्स निगोसिएशन एंड इंडिया : इवोल्यूशन एंड स्टेट आफ प्ले''* वर्किंग पेपर–7, सेंटर फार ट्रेड एंड डवलपमेंट, नई दिल्ली

पावर, के.बी. (2002) : "डब्ल्यू टी.ओ., गैट्स एंड हायर एजुकेशन: ऐन इण्डियन पर्सपेक्टिव'', यूनिर्सिटी न्यूज ए.आई.यू., नई दिल्ली।

भाल, वी. (2002) : ''इंटरनेशल स्टूडेंट्स इन इंडिया: इंटरनेशनल आफ हायर एजुकेशन'', यूनिवर्सिटी न्यूज ए.आई.यू., नई दिल्ली।

मजोरल टीम और जेफरी नारमन साउटर (2005) : *''ग्लोबल मार्केट फार हायर एजुकेशन'',* एडवर्ड एलगर पब्लिशिंग लिमिटेड, आई.यू.ए., यू.के.

रमेश चन्द्र (2005) : *''एजुकेशन एंड चैलेंज आफ ग्लोबलाइजेशन''* कालपाज पब्लिकेशन्स, दिल्ली

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

दूर शिक्षा माध्यम से विज्ञान विषयों का गुणात्मक शिक्षण

सुषमा पाण्डेय* और ओम प्रकाश सिंह**

सारांश

''दूर शिक्षा माध्यम से गुणात्मक विज्ञान विषयों का शिक्षण-सीमाएं एवं रणनीतियां'' एक समीक्षात्मक अध्ययन है। इसमें भौतिक विज्ञान विषयों को दूर शिक्षा माध्यम से पढ़ाया जाना कहां तक सार्थक है और इन विषयों के गुणात्मक एवं उद्देश्यपूर्ण शिक्षण की क्या आवश्यकतायें हैं एवं दूर शिक्षा माध्यम की क्या सीमायें हैं? इन सभी सीमाओं से जुड़ी इन कमियों को किन सुधारों से कम किया जा सकता है, और इनका क्या प्रभाव पड़ेगा। इन सभी आवश्यक तथ्यों को इस अध्ययन में उभारा गया है।

वैश्वीकरण, औद्योगीकरण एवं संचार माध्यमों के व्यापक उपयोग ने संपूर्ण विश्व के परिदृश्य को बदल दिया है। ज्ञान के विस्फोट के इस युग में सतत् शिक्षा, सभी के लिए शिक्षा जैसे अवधारणाओं ने जन्म लिया। बदलती हुयी परिस्थिति एवं परिवेश के कारण शिक्षा के वर्तमान स्वरूप में भी परिवर्तन परिलक्षित होने लगे हैं। शैक्षिक अवसरों की समानता के लिये लोग तत्पर। वास्तविक शिक्षा वह हैं। जो व्यक्ति को उचित समय पर उचित सहायता पहुंचाये और हर जगह हर व्यक्ति के लिए सीखने का क्रम जारी रखे। शिक्षा शास्त्री ***रोनाल्ड ग्रास*** का विचार है - *''आगे चलकर पढ़ा-लिखा किसे माना जाये? साधारणतया जो जानने का तरीका जान लेगा जो जानकर जाने हुए का कुशलतापूर्वक उपयोग कर सकेगा, जो इस उपयोग को सृजनात्मक बनायेगा और जानने की प्रतिक्रिया कभी बन्द नहीं होने देगा।* (अखिल भारतीय नई तालीम सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ 15 सेवाग्राम 1974)। इसी उद्देश्य से समग्र नई तालीम की संकल्पना की गयी।

* वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

** शोध छात्र, शिक्षा विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

यह संकल्पना औपचारिक शिक्षा व्यवस्था से पूर्ण होना संभव नहीं था। प्रो. टी. डब्ल्यू. शूज ने अपने विचार को केवल ''प्रगतिशील देश में खुला विश्वविद्यालय'' नामक लेख में इस प्रकार व्यक्त किया- *''केवल प्रगतिशील सामाजिक आर्थिक ढांचे में ही शिक्षा परिवर्तन का एक प्रभावी साधन सिद्ध हो सकती है। अधिकतर लोगों की शिक्षा में कम भागीदारी के कारण परिवर्तन के एक कारक के रूप में शिक्षा की प्रभावहीनता दीख पड़ती है।''*

अत: शिक्षा के गैर औपचारिक साधनों के प्रति समाज का आकर्षण बढ़ा और भारत की नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने इस बात पर बल दिया कि जन साधारण में शिक्षा के प्रसार के प्रयत्न केवल औपचारिक स्कूली शिक्षा तक ही सीमित नहीं रहे। इन्हीं कारणों से यह आवश्यकता महसूस की गयी कि विद्यालय एवं विश्वविद्यालय शिक्षा से वंचित लोगों को भी उनकी सुविधा के अनुसार शिक्षा प्रदान करें, और इस प्रकार दूर एवं खुली शिक्षा व्यवस्था का जन्म हुआ।

वास्तव में दूर शिक्षा एक गैर औपचारिक शिक्षा है जिसका सतत् शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है। फिलिप कोम्बस एवं मंजूर अहमद के अनुसार- *'निर्धारित औपचारिक शिक्षा के ढांचे के बाहर चलने वाली सुव्यवस्थित शिक्षा विधि को दूर शिक्षा कहते हैं।'*

विश्व का सर्वप्रथम मुक्त विश्वविद्यालय ब्रिटेन में 1961 में खुला। इसके पश्चात् अमेरिका में 1971 में और फिर जर्मनी व फ्रांस में भी युक्त विश्वविद्यालय खोले गये। एशिया में सर्वप्रथम जापान में मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। वर्तमान समय में 105 देशों में करीब 900 मुक्त शिक्षण संस्थायें कार्यरत हैं, और 16,000 पाठ्यक्रम चला रही हैं, और उसमें 2 करोड़ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। भारत में भी पर्याप्त संख्या में मुक्त विश्वविद्यालय कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि भारत में भी खुले विश्वविद्यालय एवं पत्राचार माध्यम से दूर शिक्षा प्रभावी हो रही है। खुली शिक्षा सर्वसुलभ है और यह अनेक शैक्षिक एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को संचालित कर रहा है, परन्तु कुछ विषयों एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को संचालित करने पर लगातार विरोधाभास प्रतिक्रियाएं होती रही हैं। इसमें वे पाठ्यक्रम या विषय आ रहे हैं, जिनका प्रायोगिक पक्ष एवं

व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान अत्यंत आवश्यक एवं पाठ्यक्रम हेतु विशेष अर्हता एवं योग्यताओं की आवश्यकता है।

इसी प्रकार से एक विचारणीय यक्ष प्रश्न यह भी उठ खड़ा हुआ है कि क्या दूरस्थ शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों का शिक्षण किया जा सकता है या नहीं। इस पर विचार करने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि शिक्षक वर्ग इस संबंध में क्या दृष्टिकोण रखता है। अत: शोधकर्त्री ने सर्वप्रथम एक लघु सर्वेक्षण अध्ययन भी किया, और इसके निम्नलिखित उद्देश्य थे।

उद्देश्य

सर्वेक्षण अध्ययन हेतु निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं :

1. दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण के संदर्भ में शिक्षकों को दृष्टिकोण ज्ञान करना।
2. भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण हेतु वर्तमान दूर शिक्षा व्यवस्था की उपयुक्तता के विषय में शिक्षकों का दृष्टिकोण जानना।
3. दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण में आने वाली चुनौतियों को जानना।
4. दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों के गुणात्मक शिक्षण हेतु आवश्यक रणनीतियों को जानना।

प्रयुक्त उपकरण : उपर्युक्त सभी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शोधकर्ताओं द्वारा 25 कथनों से परिपूर्ण दूर *शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान शिक्षण के प्रति दृष्टिकोण मापनी* का स्वयं निर्माण किया गया जिससे कि उपयोगी जानकारी प्राप्त हो सके। यह एक मुक्त प्रश्नावली है। इसमें आवश्यक सुझाव लिये गये।

आंकड़ों का संकलन : शोधकर्त्री द्वारा *''दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान शिक्षण के प्रति दृष्टिकोण मापनी''* का भौतिक विज्ञान विषयों को पढ़ाने वाले विभिन्न अध्यापकों पर प्रशासित किया गया। शोधकर्त्री ने इस शोधपत्र हेतु आवश्यक तथ्य उजागर करने के लिए उच्च माध्यमिक एवं उच्च स्तर की कक्षाओं के शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षकों से विचार विमर्श भी किया। चयनित न्यादर्श का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

तालिका-1

चयनित न्यादर्श का विवरण

उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षक	उच्च स्तर के शिक्षक	शिक्षक प्रशिक्षक	कुल
50	50	50	150

प्राप्त परिणाम : दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषय शिक्षण के प्रति दृष्टिकोण मापनी पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं का प्रदर्शन प्रतिशत के रूप में वृत्त में प्रदर्शित किया जा रहा है।

दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण के संदर्भ में प्राप्त मत

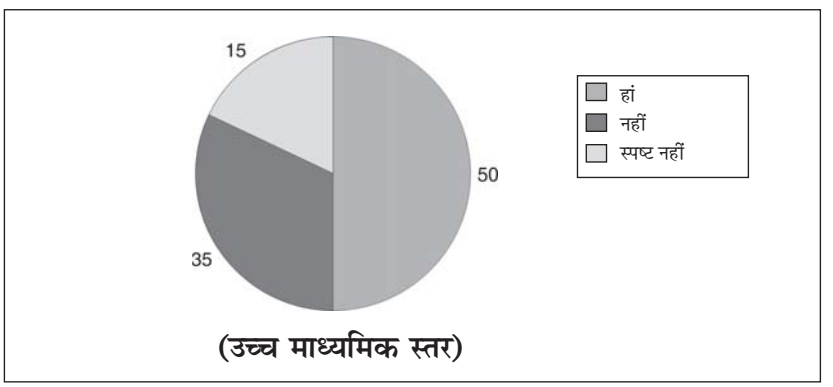

(उच्च माध्यमिक स्तर)

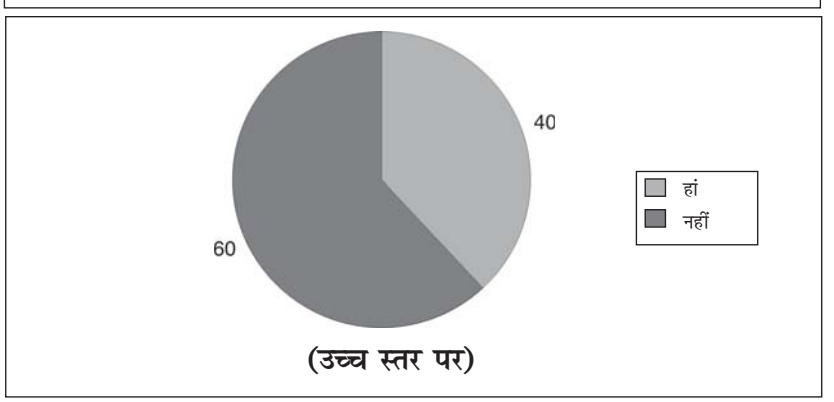

(उच्च स्तर पर)

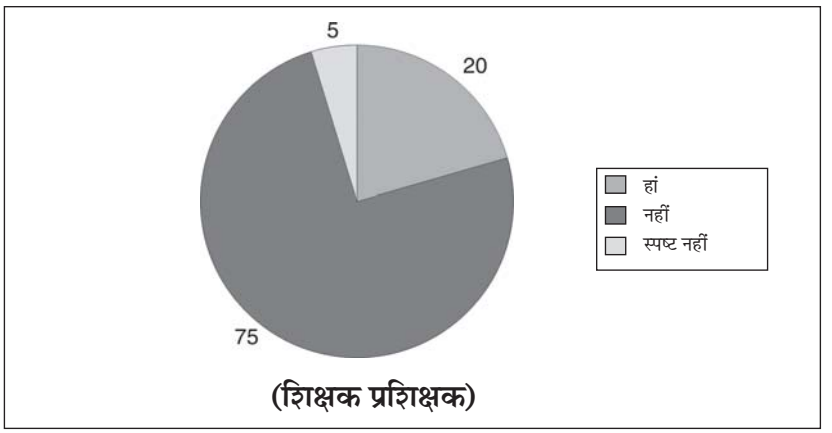

(शिक्षक प्रशिक्षक)

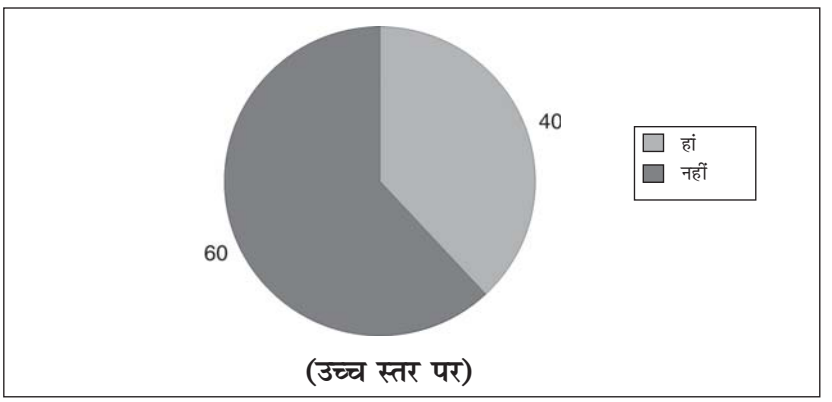

(उच्च स्तर पर)

दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण के शिक्षण हेतु वर्तमान व्यवस्था के संदर्भ में मत-

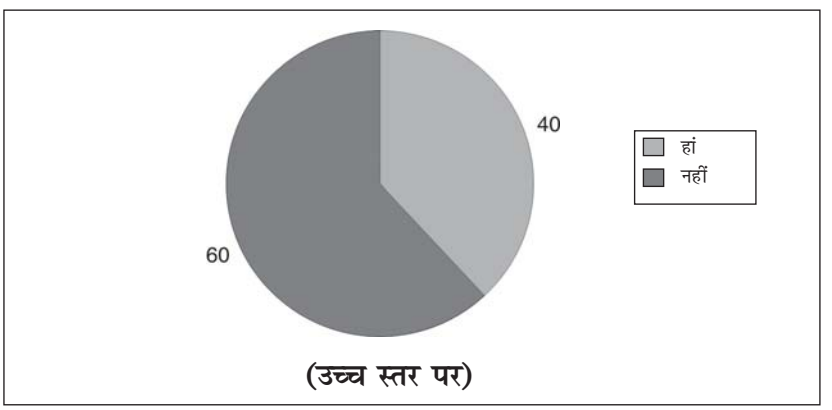

(उच्च स्तर पर)

इस लघु अध्ययन से निम्नांकित तथ्य स्पष्ट हो रहे हैं :

- उच्च माध्यमिक स्तर के 50 प्रतिशत शिक्षकों को उच्च स्तर के 40 प्रतिशत एवं शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के मात्र 20 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार ही भौतिक विज्ञान विषयों को दूर माध्यम से पढ़ाया जा सकता है। 25 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार ही भौतिक विज्ञान विषयों में विषयवस्तु उद्देश्यानुरूप प्रस्तुत की जा सकती है।
- 75 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार भौतिक विज्ञान विषयों का मात्र सैद्धान्तिक ज्ञान ही दिया जा सकेगा जो व्यर्थ होगा।
- 50 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार दूर शिक्षा माध्यम से शिक्षण करने की व्यवस्था में भौतिक विज्ञान विषयों में आवश्यक पूर्ण बदलाव लाना होगा। 25 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार आंशिक सुधार से भी काफी सम्भावनायें हो सकती हैं, परन्तु 25 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार व्यवस्था में कोई सुधार असंभव है।
- दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों का शिक्षण अगर दिया जा सकता है, इसके लिये क्या उपाय करना होगा, इसके पूर्व हमें इन प्रश्नों पर विचार करना होगा–
- भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?
- भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण हेतु कौन–कौन सी विधियां अपनायी जाती हैं?
- दूर शिक्षा माध्यम की सीमायें क्या हैं?
- भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण की आवश्यकतायें क्या हैं?
- यदि भौतिक विज्ञान विषयों का शिक्षण दूर शिक्षा माध्यम से किया जाये तो व्यवस्था में क्या सुधार करना पड़ेगा?
- दूर शिक्षा व्यवस्था में किये गये आवश्यक परिवर्तन से गुणात्मक शिक्षण में कहां तक सफलता मिल पायेगी?

भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण के मुख्य उद्देश्य: *भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित होते हैं :*

- विद्यार्थियों के सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का विकास करना, जिससे कि वे प्राकृतिक

नियमों को समझ सकें और प्राप्त ज्ञान से नित्य प्रति काम आने वाली वस्तुओं की क्रियाओं को समझ सकें।

- उनकी उत्सुकता को जागृत करके प्रमाणिक तथ्यों की खोज विधि पूर्वक करने की दक्षता प्रदान करना।
- उनकी तर्क, निर्णय तथा अनुमान करने की शक्ति का विकास करना तथा अन्धविश्वासों को दूर करने की प्रेरणा देना।
- उन्हें अपने निरीक्षित तथ्यों के संकलन तथा सुचारु विन्यास में अभ्यास के जरिए सही निष्कर्ष निकालने की कुशलता प्रदान करना।
- समस्या उपस्थित होने पर एकाग्रचितता, सचेष्टता व धैर्य शक्ति का विकास करना।
- कार्य की स्वच्छता एवं क्रमबद्धतापूर्वक करने की आदत विकसित करना।

भौतिक विज्ञान विषयों की शिक्षण विधियां : भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण हेतु अध्यापक मुख्यतया इन विधियों का उपयोग करते हैं :

प्रयोग दर्शन; करके देखो; पर्यावरण द्वारा शिक्षण; प्रश्नोत्तर विधि; तर्क-वितर्क विधि; भ्रमण द्वारा शिक्षण; खेल विधि

सहायक सामग्री के प्रयोग द्वारा निरीक्षण

भौतिक विज्ञान की यह सभी विधियां तीन प्रश्नों का उत्तर देती हैं- क्यों; क्या; कैसे

तब प्रश्न पुन: खड़ा होता है कि दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से क्या-

- इन प्रश्नों को विद्यार्थी के मन-मस्तिष्क में उत्पन्न किया जा सकेगा?
- क्या विद्यार्थी इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ पायेंगे।
- क्या विद्यार्थी जिज्ञासा, कौतुहल, एकाग्रता, तर्क से इन्हें हल कर पायेंगे।

भौतिक विज्ञान शिक्षण के लिये आवश्यकतायें और दूरस्थ शिक्षा माध्यम की सीमाएं

दूरस्थ एवं मुक्त शिक्षा माध्यम सतत शिक्षा माध्यम का ही पूरक है। आजकल शिक्षा तकनीक के बढ़ते प्रयोग एवं संचार माध्यमों के व्यापक उपयोग के कारण दूर शिक्षा या सुदूर शिक्षा आज विभिन्न विकसित एवं विकासशील देशों में लोकप्रिय शिक्षा का

माध्यम बनता जा रहा है। विभिन्न स्तर पर अनेक विषयों में एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में डिग्री, डिप्लोमा प्रदान करने का कार्य अनेक दूरस्थ शिक्षा संस्थान कर रहे हैं। परन्तु भौतिक विज्ञान विषय को दूरस्थ शिक्षा के माध्यम में पढ़ाया जा सकता है या नहीं, इसे हमें दूरस्थ शिक्षा माध्यम की सीमाओं और भौतिक विज्ञान शिक्षण की आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में ही देखना होगा।

भौतिक विज्ञान शिक्षण की आवश्यकताएं पाठ्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में	**दूरस्थ शिक्षा माध्यम की सीमाएं**
अधिकतर विषयों में प्रायोगिक पक्ष पर अधिक बल	अधिकतर सैद्धांतिक पक्ष पर अधिक बल
पाठ्यक्रम व्यवस्थित एवं वैयक्तिक भिन्नता पर बल	पाठ्यक्रम में वैयक्तिक भिन्नता का महत्व नहीं
विषयों के पाठ्यक्रम में ज्ञानात्मक, भावनात्मक, कौशलात्मक पक्ष पर अधिक बल	विषयों के पाठ्यक्रम में ज्ञानात्मक पक्ष पर अधिक बल
छात्रों की योग्यता के परिप्रेक्ष्य में	
विशेष अभिवृत्ति एवं योग्यता वाले छात्रों की आवश्यकता	योग्यता, अभिवृत्ति एवं आयु के बन्धन से मुक्त
शिक्षक-छात्र अन्तः क्रिया के परिप्रेक्ष्य	
शिक्षक की उपस्थिति में ही छात्रों के अधिकतर प्रायोगिक क्रियाकलाप	शिक्षक-छात्रों की अन्त:क्रिया अधिकांशत: असम्भव
शिक्षक छात्र का तत्काल अन्त:क्रिया एवं प्रतिपुष्टि	शिक्षक-छात्र की स्वभाविक अन्त:क्रिया एवं प्रतिपुष्टि का अभाव
छात्रों में जिज्ञासा, शान्ति, तत्काल समस्या निराकरण हेतु शिक्षकों का सहयोग	जिज्ञासा की संतुष्टि या समस्या निराकरण का तत्काल कोई सहयोग नहीं

भौतिक विज्ञान शिक्षण विधियां	
करके देखो विधि	दूर व्याख्यान विधि
प्रयोग प्रदर्शन	दूर लेखन विधि
पर्यावरण द्वारा शिक्षण प्रश्नोत्तर विधि	सम्पर्क कार्यक्रम इन्टरनेट
तर्क–वितर्क विधि	केबिल शिक्षण
भ्रमण द्वारा शिक्षण	द्विमार्गी रेडियो
सहायक सामग्री का प्रयोग	दूरदर्शन में प्रसारित कार्यक्रम
भौतिक विज्ञान शिक्षण विधियां	
सुविधापूर्ण एवं प्रेरणापूर्ण अधिगम वातावरण की आवश्यकता	सुविधापूर्ण एवं प्रेरणाप्रद वातावरण उपलब्ध कराने में अक्षम
तुरन्त पुनर्बलन	तत्काल पुनर्बलन असम्भव
शैक्षिक सुविधाओं (भौतिक) के संदर्भ	
अधिकतर विषयों में सुविधा एवं उपकरणों से परिपूर्ण प्रयोगशालाओं की आवश्यकता	सम्पर्क केन्द्रों से संबंधित शैक्षिक संस्थानों के भौतिक संसाधनों पर आश्रित होने के कारण शैक्षिक सुविधाओं का अभाव
छात्र अधिगम सुविधा की प्रचुरता की आवश्यकता	छात्र अधिगम सुविधा सेवाओं का अधिकतर अभाव
पुस्तकालय, वाचनालायों एवं पूरक अधिगम सामग्री की आवश्यकता	पुस्तकालय, वाचनालय एवं पूरक अधिगम सामग्री का अभाव
सम्प्रेषण के माध्यम के संदर्भ में	
शिक्षक द्वारा प्रभावी एवं क्रिया से परिपूर्ण सीधा सम्प्रेषण माध्यम का प्रयोग	सशक्त सम्प्रेषण माध्यमों की अधिकतर कमी

अधिगम के संदर्भ में	
करके देखने से स्थाई अधिगम	अस्थाई अधिगम
व्यावहारिक ज्ञान	सैद्धांतिक ज्ञान पर बल
प्राप्त शैक्षिक सुविधा के संदर्भ में	
सभी छात्रों को एक समान शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध	शहरी एवं सुविधापूर्ण छात्रों को ही विकसित शिक्षण माध्यम उपलब्ध

भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण हेतु आवश्यक रणनीतियां

भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण को गुणात्मक बनाने के लिये शोधकर्त्री को यह सुझाव भी मिले। यदि इन सुझावों के अनुसार व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किया जाये तो भौतिक विज्ञान विषयों का शिक्षण सार्थक हो सकता है।

प्रवेश संबंधी रणनीतियां

- दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण के लिए सीमित संख्या में विद्यार्थियों को नामांकित किया जाये।
- प्रवेश के लिए आवेदन करने वाले विद्यार्थियों में विषय विशेष के प्रति अभिवृत्ति एवं योग्यता का मापन किया जाये। जिससे विशेष योग्यता वाले विद्यार्थी स्वयं भी अध्ययन कर सकें।
- सुविधा पूर्ण केन्द्रों में इन विषय के छात्रों को प्रवेश दिया जाए।

शिक्षण केंद्रों से संबंधित

- दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों का शिक्षण देने वाले केंद्र सभी शैक्षिक सुविधाओं से पूर्ण हों।
- केंद्रों में पुस्तकालय, वाचनालय एवं इस माध्यम से शिक्षण हेतु आवश्यक प्रयोगशालाएं एवं अन्य सुविधाएं प्राप्त हो।
- केंद्रों में पूर्ण रूपेण आवश्यक प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध करवाए जाएं जिसमें

छात्र जब चाहें तब सम्पर्क बना सकें, और अपनी समस्यायें सुलझा सकें।

- शिक्षण केंद्रों में दिये जाने वाली अनुदान राशि बढ़ायी जाये जिससे वे अपेक्षित सुविधायें बढ़ा सके।
- केंद्रों में विद्यार्थियों की सहायता के लिये कुछ स्थायी संकाय सदस्य नियुक्त किए जाएं।

शिक्षण कार्यक्रम से संबंधित

- सम्पर्क कार्यक्रम कम अवधि के अन्तराल में आयोजित किए जायें।
- सम्पर्क कार्यक्रमों के अतिरिक्त संगोष्ठी एवं कार्यशालाओं का भी आयोजन किया जाये।
- सम्पर्क शिविरों में विद्यार्थियों से प्रायोगिक कार्य ही करवाये जायें।
- द्विमार्गी रेडियो, शैक्षिक दूरदर्शन, टेली-कम्युनिकेशन, टेली-कान्फ्रेसिंग, इन्टरनेट को लोकप्रिय शिक्षण का माध्यम बनाया जाये।
- दूर शिक्षा के माध्यम से शिक्षण कार्यक्रमों को विद्यार्थियों की सुविधा के अनुरूप व्यवस्थित किया जाये।
- शिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्थित जानकारी विद्यार्थियों को दी जाये। इन कार्यक्रमों में छात्रों की उपस्थिति अनिवार्य रखी जाये।

पाठ्यक्रम निर्माण संबंधी

- पाठ्यक्रम दूर शिक्षा माध्यम से शिक्षण देने में विशेषज्ञों से निर्मित करवाये जायें।
- पाठ्यक्रम में प्रायोगिक पक्ष पर बल दिया जाये।
- पाठ्यक्रम मॉडल एवं प्रारूप के माध्यम से विषय वस्तु को स्वअधिगम के अनुरूप बनाया जाये।
- पाठ्यक्रम का निश्चित अन्तराल में नवीनीकरण किया जाये।
- लिखित पाठ्यसामग्री के साथ पूरक शिक्षण सामग्री को भी निर्देशित किया जाये।

- मुद्रित सामग्री समय पर भेजी जाए।
- आवश्यक पाठ्यवस्तु के प्रायोगिक पक्ष को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाये।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया संबंधी

- शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य अन्त:क्रिया को बढ़ाने के लिये टेली-कान्फ्रेंसिंग विधि, दूर व्याख्यान विधि अपनायी जाये तथा छात्रों को प्रतिपुष्टि मिल सके।
- सम्पर्क कक्षाओं में मात्र व्याख्यान नहीं प्रायोगिक एवं व्यावहारिक शिक्षण पर बल दिया जाये।
- छात्रों को आवश्यकतानुसार सम्पर्क केन्द्र प्रयोगशालायें, पुस्तकालय उपलब्ध करवाए जाएं।
- सम्पर्क केन्द्रों में सशक्त अधिगम एवं क्रियाशीलता का वातावरण निर्मित किया जाना चाहिए।

मूल्यांकन संबंधी सुझाव

- दूर शिक्षा माध्यम में मूल्यांकन मुख्यतया दल कार्य एवं परीक्षा पर ही निर्भर रहता है। सतत् मूल्यांकन की व्यवस्था की जाये।
- प्रायोगिक कार्यों का भी पर्याप्त मूल्यांकन किया जाये।

शिक्षक प्रशिक्षण संबंधी सुझाव

- इस माध्यम से शिक्षण करने वाले शिक्षकों को अतिरिक्त सेवाकालीन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।
- प्रशिक्षण में कम समय के लिये सम्पर्क में आये छात्रों में भौतिक विज्ञान विषयों का प्रभावशाली शिक्षण करने की विधा बतायी जाये।

भौतिक विज्ञान विषयों के शिक्षण हेतु दूर शिक्षा व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन का प्रभाव

दूर शिक्षा माध्यम से भौतिक विज्ञान विषयों का शिक्षण यदि आवश्यकता के रूप में है तो निश्चय ही इस ओर हमें प्रयास करना होगा और यदि व्यवस्था में कुछ सुधार एवं

परिवर्तन ऊपर दिये गये सुझावों के अनुरूप ही किये जाएं तो शिक्षण में यह प्रभाव देखा जा सके।

- दूर शिक्षा माध्यम से प्रशिक्षित अध्यापक कम समय में भी भौतिक विज्ञान विषयों का प्रभावशाली एवं उद्देश्यानुरूप शिक्षण कर सकेंगे।
- सीमित एवं योग्य छात्रों के प्रवेश लेने से दूरवर्ती शिक्षा संस्थान छात्रों को उपयोगी शिक्षण अधिगम वातावरण एवं सुविधायें दे।
- सुविधापूर्ण शिक्षण केन्द्रों के चयन से छात्रों को आवश्यक शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध हो सकेंगी।
- शिक्षण केन्द्रों की अनुदान राशि बढ़ा देने से ये केंद्र दूर शिक्षा माध्यम से शिक्षा देने के लिये आवश्यक मानवीय एवं भौतिक संसाधन जुटा सकेंगे। केन्द्रों में सशक्त शिक्षण अधिगम वातावरण निर्मित होगा।
- सम्पर्क कार्यक्रमों की अवधि एवं संख्या बढ़ाने से छात्र शिक्षक दूरी कम होगी, और शिक्षण में आवश्यक प्रायोगिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के साथ छात्रों को प्रतिपुष्टि मिल सकेगी।
- द्विमार्गी रेडियो, शैक्षिक दूरदर्शन, टेली-कम्युनिकेशन, टेली-कान्फ्रेंसिंग, इन्टरनेट को लोकप्रिय माध्यम बनाये जाने से प्रयोग, प्रदर्शन, सहायक सामग्री से शिक्षण आदि विधियों से शिक्षण किया जा सकेगा।
- प्रशिक्षित विषय विशेषज्ञ शिक्षकों से पाठ्यक्रम निर्माण करवाने से दूर शिक्षा माध्यम की छात्रों के आवश्यकता के अनुरूप ही पाठ्यक्रम बनेगा।
- लिखित सामग्री के साथ पूरक शिक्षण सामग्री छात्रों को समग्र ज्ञान देने में उपयोगी होगी।
- सम्पर्क केन्द्रों में प्रायोगिक एवं व्यावहारिक क्रिया कलापों के सतत् मूल्यांकन करने से भौतिक विज्ञान विषयों के व्यावहारिक व प्रायोगिक ज्ञान को बल मिलेगा।
- सम्पर्क केन्द्रों में प्रायोगिक ज्ञान देने से-करके देखो, प्रयोग विधि, प्रश्नोत्तर विधि, तर्कविधि जैसी विधियां छात्रों में जिज्ञासा जागृत कर उन्हें क्यों? क्या? और कैसे? का उपयुक्त उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रेरित करेंगी।

संदर्भ

यादव एस. (2002): *दूरवर्ती शिक्षा,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

माथुर एस.एस. (2002): *शिक्षण कला,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

माथुर एस.एस. (2002): *शिक्षण कला एवं शैक्षिक तकनीकी,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

शर्मा एच.एस. (2002): *गणित शिक्षण,* राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा।

शुक्ला सी.एस. (2003): *साइन्स टीचिंग,* लायेल बुक डिपो, मेरठ।

चन्दा एस.सी. (2002): *मैथेड ऑफ टीचिंग,* लायेल बुक डिपो, मेरठ।

सिंह एच.एन. (2002): *भूगोल शिक्षण,* विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

सिंह एस. (2002): *गणित शिक्षण, विनोद पुस्तक मंदिर* आगरा।

शर्मा वी.के. (2002): *सतत शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर* आगरा।

मिश्रा के. एस. (2002): परसपैक्टिव ऑफ साइंस एजूकेशन, *विनोद पुस्तक मंदिर* आगरा।

लाल एवं डा. त्रिपाठी (2003): *शिक्षा में नवाचार, विनोद पुस्तक मंदिर* आगरा।

यू.पी.आर.टी.ओ.यू. (2003): *उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मुक्त विश्वविद्यालय की भूमिका, लेख,* यू.पी.आर.टी.ओ.यू. यार्नहिल रोड, इलाहाबाद।

चौबे एस.पी. (2004): दूर *शिक्षा एवं सामाजिक मान्यता,* व्याख्यान पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, गोरखपुर विश्वविद्यालय।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

हरियाणा में उच्च शिक्षा का विकास
ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीय संदर्भ में वर्तमान परिदृश्य

महेन्द्र सिंह*

रोटी, कपड़ा व मकान जैसी मूलभूत आवश्यकता के उपरांत मनुष्य की पहली जरूरत शिक्षा की होती है। क्योंकि इसी आधार पर वह जीवन के प्रति समझ पैदा करता है तथा समाज की व्यवस्था को समझता है, जिस के आधार पर वह अपनी व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक जिम्मेदारी को निभाता है। यहाँ यह पूर्णतया सत्य है कि प्रारंभिक शिक्षा मनुष्य को मात्र अक्षर ज्ञान देती है तथा माध्यमिक शिक्षा मूलभूत जानकारी ही प्रदान कर पाती है। जबकि उच्च शिक्षा किसी भी समाज की दिशा, आदर्श व भविष्य को निर्धारित करती है एवं व्यक्ति में आचरण, समाज की अपेक्षा पूर्ण करने की क्षमता, विश्व की अन्य संस्कृतियों से तुलना व प्रतियोगिता करने की क्षमता, विकास व उन्नति के अवसर तथा समस्याओं के समाधान के बारे में प्रशिक्षित करती है। ऐसे में जब विश्व हर प्रकार के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक बदलाव के दौर से गुजर रहा हो तो इस प्रकार के विषयों पर संगोष्ठी का महत्व बढ़ जाता है। क्योंकि किसी भी समाज को न केवल इन परिर्वतनों को देखना है बल्कि आत्मसात भी करना है तथा उसके अनुरूप अपने आपको ढालना भी है। भारत जैसे जटिल सामाजिक और अंत प्रवाहों वाले देश में इस तरह की परिकल्पना एक बेहद चुनौति पूर्ण कार्य तो है लेकिन इस बारे में बात करना मजबूरी भी है।

निसंदेह भारत में प्रचलित शिक्षा व उच्च शिक्षा व्यवस्था अंग्रेंजी शासन प्रणाली की देन है। अग्रेंजों ने परम्परागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था[1] को समाप्त कर औपनिवेशिक शासन प्रणाली स्थापित की। भारत में यह शिक्षा व्यवस्था बंगाल एशियाटिक सोसायटी[2] की स्थापना 1784 से प्रारम्भ होती है। जबकि हरियाणा क्षेत्र में 1813 व 1833 का चार्टर,

* प्राध्यापक, दयानन्द कालेज, हिसार, हरियाणा

1835 की मैकाले रिर्पोट, 1843–53 के बीच जैम्स थैम्सन के कार्य तथा 1854 का बुड डिस्पैच[4] अपनी भूमिका अदा करता है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 1883 का हण्टर शिक्षा आयोग, 1904 का विश्वविद्यालय कानून, 1913 की सरकारी शिक्षा नीति[5] 1917–19 का सैंडलर विश्वविद्यालय कानून, 1929 की होटेंग कमेटी रिर्पोट, 1935की वार्धा शिक्षा आयोग तथा 1944 की सर्जेट शिक्षा निति[6] मील के पत्थर हैं। इन सभी के कारण जहाँ अंग्रेज अपने कुछ उद्देश्य पूरा करने में सफल रहे वहीं इनके कारण इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा का सूत्रपात हुआ। शुरूआती तौर से देखें तो इस क्षेत्र में 1792 का दिल्ली कॉलेज मुख्य है जिसे 1823 में सरकार ने ले लिया तथा 1877 में यह लाहौर कॉलेज में सम्मिलित कर दिया गया। दिल्ली में 1882 में स्टीफन कॉलेज तथा 1889 में हिंदू कॉलेज खुला[7]। इस समय तक लाहौर में कुल चार कॉलेज खुल चुके थे। इस तरह इस क्षेत्र के विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए दिल्ली व लाहौर जाते थे। 1889 में अम्बाला में शिक्षक प्रशिक्षण संस्था खुली जिसे जल्दी ही दिल्ली विस्थापित कर दिया गया[8]। 20वीं शताब्दी की शुरूआत तक हरियाणा क्षेत्र में कोई भी कॉलेज नहीं था। 1927 में रोहतक में इण्टर मिडियेट कॉलेज खुला जो 1941 में जाकर सरकारी कालेज बना। इसी बीच अम्बाला में 1938 में एस.ए. जैन कॉलेज की स्थापना हुई। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 1947 तक वर्तमान हरियाणा के क्षेत्र में कुल 6 कॉलेज थे जिनमें रोहतक में एक सरकारी कॉलेज था[9] । जबकि अन्य पांच एस.डी. कॉलेज अम्बाला, जाट कॉलेज रोहतक, एस.ए. जैन कॉलेज अम्बाला, वैश्य कॉलेज भिवानी तथा अहीर कॉलेज रिवाड़ी थे।

भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात शिक्षा के लिए जो आयोग गठित हुए उन्होंने उच्च शिक्षा के बारे में भी सुझाव दिए। इस आयोग में डॉ. राधाकृष्णनन आयोग, आचार्य नरेन्द्र देव आयोग, जाकिर हुसैन कमेटी, कोठारी आयोग व राममूर्ति आयोग मुख्य थे। इनके कारण हरियाणा क्षेत्र में भी काफी बदलाव आया। 1947–1966 के बीच हरियाणा की स्थिति में काफी बदलाव आया। हरियाणा में 1951 में 14 कॉलेज, 1956 में 23 कॉलेज, 1961 में 36 तथा 19566 तक इनकी संख्या 40 हो गई। इसी तरह 1951 में 5791 विद्यार्थी तथा 1966 में 29011 थे[11] । हरियाणा राज्य के गठन के उपरांत हरियाणा में हर प्रकार के कॉलेजों व विश्वविद्यालयों की संख्या में भी कई गुणा वृद्धि हुई। 2003–04 तक हरियाणा में कुल कालेजों की संख्या 187, शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज 20, कृषि

कॉलेज 3, चिकित्सा कॉलेज 3, इंजीनियरिंग कॉलेजों की संख्या 30 तथा विश्वविद्यालयों की संख्या 5 हो गई। इन विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या भी लगभग 2,20,000 हो गई।[12] इस तरह से यह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् हरियाणा तेजी से उच्च शिक्षा के मार्ग पर आगे बढ़ा है।

हरियाणा में उच्च शिक्षा को यदि आंकड़ों की दृष्टि से देखें तो काफी संतुष्टि होती है क्योंकि यह शिक्षा आम व्यक्ति की पहुंच तक आ गई है। 1990 के बाद उदारीकरण व निजीकरण के क्षेत्र में शिक्षा व्यवस्था में भी कई तरह के बदलाव आए हैं।[13] ये बदलाव राष्ट्रीय व स्थानीय दोनों स्तरों से जुड़े हैं। हां, यह तो स्पष्ट है कि इस शिक्षा के परिवर्तन में 1986 की नई शिक्षा नीति[14], 1992 के शिक्षा संबंधित नीतिगत संशोधन, 1994 की स्वामीनाथन रिर्पोट, 1995-96 की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग महाविद्यालयों में स्वपोषित पाठयक्रम संबंधित रिर्पोट[15], 1997 का सरकारी शिक्षा सबसीडी संबंधित दस्तावेज, 2000 की अम्बानी विडला रिर्पोट[15] व आदर्श विश्वविद्यालय विधेयक इत्यादि की अहम भूमिका हैं। हरियाणा में 2000 की शिक्षा नीति भी इस श्रृंखला का एक हिस्सा कही जा सकती है। विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों व सर्वोच्च न्यायलय के आदेशों ने भी उच्च शिक्षा की दशा व दिशा में काफी परिवर्तन किया[17]।

उच्च शिक्षा के बारे में विभिन्न पक्षों के बारे में जानने के लिए इसके विभिन्न आयामों का समझना अनिवार्य है।

हरियाणा में उच्च शिक्षण संस्थाओं में सरकारी, सहायता, प्राप्त गैर सरकारी व पूर्णतया गैर सरकारी हैं। इनका अनुपात 2001 की जनगणना के आधार पर 55:80:19 है[18]। इनमें छात्राओं के महाविद्यालय 40 हैं जिनमें से सरकारी कॉलेजों की संख्या 7 है। अधिकतर सरकारी कॉलेजों में स्थायी प्राचार्य भी नहीं हैं। विद्यार्थी व शिक्षक अनुपात भी लगातार बढ़ता जा रहा है। 1960 में यह 20:1, 1966 में 23:1,1974 में 32:1, 1998-99 में 34:1 [20] तथा 2000-2001 में 35:1 हो गया था। जबकि राष्ट्रीय स्तर पर अनुपात 1965-66 में 12.6:1, 1998-99 में 21.7:1 तथा 2000-2001 में 22:1 रहा। हरियाणा के विश्वविद्यालयों में भी शिक्षक विद्यार्थी अनुपात में इसी तरह की वृद्धि दर्ज की जा रही है। गैर-सरकारी सहायता प्राप्त कॉलेजों में दिसंबर 1997 के

बाद कोई भी स्थायी प्रावृयापक नियुक्त नहीं हुआ है।

जहां तक तकनीकी व रोजगार प्रदान करने वाली संस्थाओं का प्रश्न है, इनकी 1995 के बाद बाढ़ सी आ गई। इन शिक्षण संस्थाओं में उचित उपकरण व प्रयोगशाला इत्यादि का अत्याधिक अभाव है। इन संस्थाओं में विद्यार्थी को ग्राहक की भांति देखा जाता है जबकि यहां से उर्तीण विद्यार्थियों की रोजगार के संदर्भ में स्थिति अधिक बेहतर नहीं है। अत्याधिक फीस के चलते कई कॉलेजों में सीटें खाली रहती हैं[22]।

उच्च शिक्षा के मौलिक स्वरूप व पाठ्यक्रम इत्यादि को देखें तो यह अधिकतर हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हैं। इसी तरह से मूल्यांकन पद्धति काफी पूर्ण मूल्यांकन करने की आवश्यकता काफी पहले से महसूस की जा रही है। परंतु जितने भी सुधार के कदम उठाए जाते हैं उनमें पाठ्यक्रम बढ़ाने, अध्ययन के विषय बढ़ाने या परीक्षा पेपर की संख्या बढ़ाने या फिर अध्ययन के वर्ष बढ़ाने के अतिरिक्त कोई सार्थक और उचित संशोधन नहीं किया गया है। दूसरी ओर परीक्षा प्रणाली व उसमें प्रयोग होने वाले विभिन्न तथ्यों पर प्रकाश डालें तो यह स्पष्ट होगा कि एक सामान्य विद्यार्थी विषय के पाठ्यक्रम की लगभग 10 प्रतिशत जानकारी ही ले पाता है[23]। अपने जीवन के 15 या इससे अधिक वर्ष गुजारने के बाद भी यदि किसी विद्यार्थी से यह पूछ लिया जाता है कि वह क्या कर सकता है तो उसका जवाब होता है कुछ नहीं। इस जवाब से इस शिक्षा व्यवस्था की उपयोगिता पर ही सवाल उठ जाता है जबकि यह सत्य है कि यह सवाल पहली बार नहीं उठा बल्कि स्वतन्त्रता के तत्काल पश्चात से ही ऐसी स्थिति बन गयी थी।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का साकारात्मक पक्ष यह है कि इसने दुनिया के सबसे अधिक वकील, अध्यापक, इंजीनियर, डॉक्टर, कम्प्यूटर विशेषज्ञ प्रदान किए हैं एवं इनकी आवश्यकता के लिए विश्व के सभी प्रमुख देश भारत की ओर आशा भरी नज़रों से देख रहे हैं। नाकारात्मक पक्ष यह है कि इसी व्यवस्था ने अकुशल बेरोजगारों का भी विश्व का सबसे बड़ा समूह पैदा किया है। इसकी कमजोरी यह भी है कि भारत में व्यक्ति जैसे-जैसे शिक्षा प्राप्त कर लेता है वह समाज की जड़ों से भी कट जाता है। उसे गांव में रहना,सामान्य लोगों में रहना या फिर देश में रहना अपनी मर्यादा के विरूद्ध लगना प्रतीत होने लग जाता है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की बात करते हुए युवा वर्ग की मानसिकता का जिक्र करना भी अनिवार्य हो जाता है। जैसे-जैसे सुख-सुविधायें बढ़ रही हैं तथा विज्ञान तरक्की कर रहा है वैसे-वैसे युवा वर्ग की मानसिकता में भी बदलाव आ रहा है। 1950 के बाद यदि प्रत्येक दशक के छात्रों की मानसिकता का अध्ययन करें तो इसमें काफी अंतर आ जाता है। उसी अनुरूप कॉलेजों की समस्यायें भी बदलती हैं[24]। उदाहरण के तौर से आज से लगभग 5 वर्ष पहले कॉलेज प्रांगण में मोबाइल इत्यादि का प्रचलन नहीं था तथा इससे जुड़ी समस्यायें भी नहीं थीं। इसी तरह आज से लगभग 20 वर्ष पहले आज वाली फोटोस्टेट मशीन नहीं थी तो वर्तमान नकल करने की पद्धति भी भिन्न थी। हमारे सामाजिक संस्कारों में किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व आन्तरिक सौन्दर्य को बताया जाता है जिसमें बाह्य आवरण कपड़े, जूते, बाल इत्यादि को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। जबकि आज कॉलेज के विद्यार्थी एवं समाज में भी बहुत बड़ा समुदाय केवल दिखावे को ही व्यक्तित्व मानने लगा है। इसी तरह से युवाओं के आदर्शों में भी परिवर्तन आ रहा है। व्यक्तिगत सम्पर्क के आदर्श कम होते जाते रहे हैं, टी.वी, और क्रिकेट, सिनेमा से जुड़े लोग और सेलेब्रेटी आदर्श के रूप में अधिक स्थापित हो रहे हैं[25]।

राष्ट्रीय परिदृश्य व हरियाणा के संदर्भ में उच्च शिक्षा के मौलिक स्वरूप में परिवर्तन हुआ। शिक्षा के इस परिर्वतन ने बाजारू प्रवृति को जन्म दिया है एवं शिक्षण संस्थाएं बड़े-बड़े शो-रूम व छोटी-छोटी दुकानों का रूप धारण कर रही हैं। शिक्षा से जुड़े मौलिक विषयों को निरर्थक बताया जाने लगा है। सरकार उच्च शिक्षा को निजी हाथों में सौंपकर मात्र प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा तक अपना सरोकार जताने लगी है। शिक्षा की व्यवस्था को देखने व सुधारने के लिए शिक्षाविदों को नियुक्त करने की बजाए पूंजीपतियों को इस बारे में रिर्पोट प्रस्तुत करने के ि लए कहा जा रहा है[26]। इससे शिक्षा को लाभकारी व्यवसाय बनने का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। इसके कारण तकनीकी व रोजगारपरक संस्थाओं की संख्या में वृद्धि तो हुई है लेकिन यह आम व्यक्ति ही नहीं बल्कि मध्यम वर्ग की पहुंच से बाहर हो गई है। रोहतक में एम.बी.वी.एस. में एक विद्यार्थी 1995 में लगभग 1800 रुपये में प्रवेश लेता था वही 2002-03 में 3100 रुपये में तथा 2003-04 में 15000 रुपये में प्रवेश ले पाया तथा मैनेजमैंट कोटे, एन.आर.आई. इत्यादि की फीस 25 लाख से 40 लाख रुपये तक निर्धारित है इसी तरह से सामान्य इंजीनियरिंग की फीस रु. 7500 से चार लाख रुपए तथा मैनेजमैंट कोटे के नाम से

अधिक बन गई है। अम्बानी बिडला कमेटी की रिर्पोट को आधार बनाया जाये तो इसे लागू होने के बाद एक कला वाणिज्य स्नातक को तीन वर्ष में लगभग 2-3 लाख रुपए तथा एक कला स्नात्कोतर वर्षों में लगभग 2 लाख रुपया खर्च करना होगा[27]। इस खर्च में होस्टल, आवास, खाना व पुस्तकों का खर्च शामिल नहीं है। इसी रिर्पोट में यह भी सिफारिश की गई है कि सरकार शिक्षा के लिए ऋण देने की व्यवस्था भी करे। अत: समझने का सवाल यह है कि रोजगार की गारंटी के अभाव में अभिभावक ऋण क्यों लेगा तथा कैसे उतारेगा । इससे अमीर व गरीब के बीच अंतर तो बढ़ेगा ही में यह स्थापित शासन तथा समाज व्यवस्था व पारिवारिक मूल्यों के बिखराव का कारण भी बनेगी इसके अतिरिक्त भी अन्य बहुत सी समस्यायें व सवाल हैं जिनको इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के बारे में कुछ अन्य बातें भी समझना अनिवार्य है। भारत के संविधान में नीति निर्देशक सिद्धान्तों में यह आशा व्यक्त की गई है कि भारत में सरकार शिक्षा पर कुल सकल उत्पाद का 6 प्रतिशत खर्च करेगी, परन्तु यह कभी भी लगभग 3.5 प्रतिशत से अधिक खर्च नहीं हुआ तथा उच्च शिक्षा पर इसका प्रतिशत 0.5 प्रतिशत से भी कम रहा है[28]। जबकि विकसित देशों में यह क्रमश: 10 प्रतिशत तथा 2.5 प्रतिशत के लगभग है। हरियाणा में 2001-02 के बजट में कुल शिक्षा पर 2.2 प्रतिशत खर्च किया गया। शिक्षा के बारे में राशि 161741.90 लाख रुपये थी जिसमें से उच्च शिक्षा पर 22258.63 रुपये अर्थात शिक्षा खर्च का लगभग 13 प्रतिशत[29] का प्रावधान था। इसी तरह भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों का प्रतिशत भी विश्व के मुख्य देशों की तुलना में कम है। भारत में यह संख्या 2001 की जनगणना के आधार पर 6.13 प्रतिशत, इंग्लैंड की 30.35 प्रतिशत, अमेरिका की 53.50 प्रतिशत, फ्रांस की 36 प्रतिशत, इण्डोनेशिया की 11.67 प्रतिशत तथा मंगोलिया की 14.16 प्रतिशत थी[30]। यहां एक विशेष बात यह भी है कि विश्व के लगभग सभी मुख्य विकसित व विकासशील देशों में मात्र अमेरिका ऐसा देश है जहां उच्च शिक्षा अंशत: निजी हाथों में है। अन्यथा अन्य देशों में सरकारी उच्च शिक्षा है।

अब प्रश्न उठता है कि यदि इसी प्रकार की उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में हरियाणा व भारत की स्थिति रही तो हमारा भविष्य कैसा होगा। इस बारे में विस्तृत रूप से समझ विकसित करने के लिए विभिन्न आयामों से देखना होगा।

भारत सरकार व राज्य सरकार की शिक्षा नीति से तो यह निष्कर्ष निकलता है, कि उच्च शिक्षा से सरकार अपना पल्ला झाड़ने का मन बना चुकी है। इसीलिए स्वपोषित विषयों, कालेजों विश्वविद्यालयों को खोलने की दिशा में कार्य किया जा रहा है[31]। इस समाज में किस तरह के संकट पैदा होंगे, इस पर किसी भी सरकार, सरकारी संस्था, शिक्षण नियंत्रक संस्था ने कोई विशेष कार्य नहीं किया है। जबकि विश्व के अन्य देशों का उदाहरण देखें तो यह स्पष्ट होगा कि किसी भी तरह का नीतिगत परिवर्तन करने से पहले विभिन्न पक्षों को बारिकी से देखा जाता है।

आज विश्व की स्थिति 20 या 50 वर्ष पहले की नहीं है। बल्कि सम्पूर्ण विश्व एक ग्राम बन चुका है। ऐसे में नीति निर्धारण के मार्ग में विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन इत्यादि अपनी भूमिका निभा रहे हैं। इस भौगोलिक परिदृष्य में सम्पूर्ण विश्व के लिए एक जैसी उच्च शिक्षा प्रणाली विकसित होना न केवल कठिन बल्कि असम्भव भी है तथा इस तरह की सोच रखना तर्कसंगत भी नहीं है क्योंकि विश्व के विभिन्न देशों की सामाजिक मानसिकता, संरचना, सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक मूल्य व सामाजिक आचरण एक जैसा नहीं है तो एक जैसी व्यवस्था कैसे हो सकती है। अत: बाजारीकरण की बाढ़ में विकसित देश विकासशील देशों के मानव संसाधन व श्रम शक्ति का प्रयोग अपने दृष्टिकोण से करना चाहते हैं। भारत जैसे देश में जहां राष्ट्रीय चरित्र, राजनैतिक नेतृत्व की सोच मौकापरस्ती पर आधारित हो, कदम-कदम पर विभिन्नता हो, क्षेत्रवाद चरम पर हो, भूखमरी, बेरोजगारी, साम्प्रदायिकता व आतंकवाद इत्यादि समस्या हो तो कोई भी बाह्य शक्ति इसका लाभ उठाने की स्थिति में हो सकती है।

विश्व में सूचना-तकनीकी के विकास के करण नयी सामाजिक संरचना उभर रही है। जहां श्रम की प्रकृति में बदलाव आ रहा है, रोजगार के अवसर सीमित हो रहे हैं, सूचना तन्त्र के बल पर एक देश दूसरे पर अप्रत्यक्ष दबाव बनाने में सफल हो रहे हैं एवं नव उपनिवेश का जोर जारी है। ऐसे में किसी भी समाज का अपनी उच्च शिक्षा की नीति के बारे में मंथन करना होगा। इसमें एक बात तो स्पष्ट है कि वर्तमान तंत्र कम से कम इन चुनौतियों को सुलझाने की स्थिति में नहीं है। परन्तु जो तंत्र 1995 के बाद विकसित किए जाने की दिशा में बढ़ रहा है, वह और कहीं घातक व जड़ों को खोखला करने वाला है तो वह हर प्रकार की तबाही तथा स्थायी तौर पर

अपंग बनाने वाला होगा। इस तरह से किराये की बैसाखियों पर अपने उच्च शिक्षा तंत्र को विकसित करना अप्रासंगिक है। हमारा विजन है कि भारत 2020 तक विश्व का सिरमौर होगा या विकसित देश होगा। परंतु इस विजन को साकार करने के मार्ग में उपर्युक्त समस्याओं के चलते राष्ट्रीय चरित्र का अभाव में, भ्रष्टाचार की खुली परिधि में, युवा पीढ़ी की संकीर्ण मानसिकता, प्रौढ़ पीढ़ी द्वारा उपयुक्त मार्ग दर्शन की उचित क्षमता का अभाव, स्वार्थी सोच, आर्थिक व्यवस्था का खतरे में होना, कार्य संस्कृति का अभाव तथा पर्यावरणीय संकट के चलते ऐसा कैसे संभव होगा। यह केवल चमत्कार पर ही आश्रित होने की बात या मन को ढाढस देने वाली स्वपनिल सोच या मृग तृष्णा तो नहीं है। अत: कल्पना के साये में रहते हुए विकसित होना अत्यन्त दुलर्भ कार्य है वह भी उन स्थितियो में जब हमारा मुकाबला अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, फ्रांस, कनाडा, चीन व इटली इत्यादि राष्ट्रीयता के नागरिकों से होना हो। वास्तव में इन वर्णित देशों में से अधिकतर ने तो अपनी समस्याओं का समाधान कर लिया है। अन्य के समाधान की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं जबकि हम समस्याओं के जाल में उलझते जा रहे हैं।

अन्त में विभिन्न पक्षों के अध्ययन के बाद हरियाणा एवं राष्ट्रीय संदर्भ में उच्च शिक्षा के संदर्भ में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं एवं इसके ऐतिहासिक पक्ष, वर्तमान व भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। इस निष्कर्ष के आधार पर यह स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा का भविष्य उज्ज्वल नहीं है। विशेषकर उच्च शिक्षा के संदर्भ में जो नया अर्थशास्त्र उभर रहा है वह गंभीर संकट की चेतावनी है। इन सबसे बचने के लिए भारतीय समाज के वास्तविक मूल्यों, संरचना व उसकी आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा पद्धति की जरूरत है। इसके लिए अतीत के अनुभव को, विकसित देशों की उच्च शिक्षा प्रणाली, अंग्रेजों की वर्तमान शिक्षा पद्धति, अन्य विकासशील देशों के विकासदायी सोच वाली शिक्षा का अध्ययन करने की जरूरत है। शिक्षा को रोजगार परक बनाना अनिवार्य है लेकिन उसके लिए यह बाजार की वस्तु नहीं बननी चाहिए तथा इस पर मुट्ठी भर लोगों का कब्जा न हो। आम व्यक्ति भी इस शिक्षा को ले सके। इसके लिए सरकार को भी कल्याणकारी राज्य के आदर्श के अनुरूप उच्च शिक्षा को बाज़ार के में उलझाने की बजाए उचित दिशा देना चाहिए। तभी भारतीय समाज, व्यक्ति, जनमानस सही अर्थों में 21वीं सदी का जीवन जी सकेगा एवं

उच्च शिक्षा अपने तीनों आयामों, अध्ययन-अध्यापन, शोध व सामाजिक उपादेयता के अर्थ को पूरा कर सकेगी।

संदर्भ

1. वैदिक काल में अंग्रेजी शासनकाल तक भारत की शिक्षा-पद्धति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया। गुरुकुल शिक्षा, मंदिरों की शिक्षा, मस्जिदों, मदरसों की शिक्षा पैतृक पेशेवर के द्वारा जारी थी। यह शिक्षा सीमित लोगों तक थी एवं समाज में स्वीकृत भी थी। इसमें लोग मुख्य रूप से अपनी मातृ भाषा में शिक्षा लेते थे।
2. इस संस्था की स्थापना का उद्देश्य भारतीय साहित्य का अध्ययन करना था परन्तु इसके लिए उन्हें कुछ चुनिंदा भारतीयों की आवश्यकता थी जो भारतीय भाषाओं व अंग्रेजों की भाषा के बीच तालमेल बैठा सकें।
3. 1813 के चार्टर के जरिए पहली बार अंग्रेजों ने एक नीतिगत फैसला दिया कि भारत में प्रति वर्ष एक लाख रुपए शिक्षा पर खर्च किया जायेगा। प्रारम्भ में ये खर्च इसलिए नहीं हो सका क्योंकि भारत में यह विवाद प्रारम्भ हो गया कि यह धन भारतीय भाषाओं पर खर्च किया जाय या पाश्चात्य पर।
4. उदयशंकर व सी.एल. कुण्डु, एजुकेशन इन हरियाणा (सं.), कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, 1971, पृष्ठ 4-5
5. उपरोक्त पृष्ठ 7-10
6. सुभाष चन्द्र, हरियाणा में उच्च शिक्षा : दशा व दिशा, दिल्ली, 2004 पृष्ठ 12
7. उदयशंकर व कुण्डु, पूर्वोक्त, पृष्ठ 6-10
8. उपरोक्त, पृष्ठ 8
9. उपरोक्त, पृष्ठ 9-10
10. वाई.पी. अग्रवाल, न्यू डायमैन्शन इन एजुकेशन, कुरूक्षेत्र, 1993, पृष्ठ 7-9
11. उदयशंक व कुण्डु, पूवोक्त, पृष्ठ 43-66
12. सुभाषचन्द्र, पूर्वोक्त पृष्ठ 16
13. भीम सिंह दहिया, हायर एजुकेशन इन इंडिया, दिल्ली 1996, पृष्ठ 4-7
14. वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का आधार ही यह शिक्षा नीति है। जिसमें उच्च शिक्षा को रोजगार से जोड़ने की बात कहते हुए 10+1, 10+2 प्रणाली की शुरुआत की।
15. सुभाषचन्द्र, पूर्वोक्त पृष्ठ 7

16. यह रिपोर्ट 2015 के आधार वर्ष मान कर तैयार की गई है तथा प्रकाशन के समय से ही चर्चित व विवादास्पद है।

17. न्यायालय के निर्णय से जहां फीस पर लगाम लगाने की कोशिश की गई है वहीं निजीकरण का एक नया दौर भी प्रारम्भ हुआ है।

18. सुभाषचन्द्र, पूर्वोक्त पृष्ठ 14

19. उदयशंकर व कुण्डु, पूर्वोक्त, पृष्ठ 47–66, अलग–अलग जिलों को जोड़कर यह अनुपात निकाला गया है।

20. सुभाषचन्द्र, पूर्वोक्त पृष्ठ 17

21. उपरोक्त, पृष्ठ 18

22. इसके लिए वर्ष भर इन कालेजों द्वारा बार–बार रिक्त स्थानों की भर्ती हेतु विज्ञापन दिए जाते रहते हैं।

23. एक सामान्य विद्यार्थी पहले विषय का ऑपशन चुनता है। उस विषय की सभी बातें पाठ्यक्रम में शामिल नहीं हो पाती। फिर औसतन पेपर में 50 प्रतिशत से अधिक की छूट रहती है। उसमें से विद्यार्थी को 35 प्रतिशत अंक लेने पर उत्तीर्ण घोषित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी वर्ग का बहुत बड़ा हिस्सा अवैध तरीके भी प्रयोग करता है।

24. भीम सिंह दहिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ 112–1145

25. विद्यार्थी वर्ग की कार्यशैली, वेशभूषा व बातचीत के बाद इस बात का आभास किसी के लिए भी कठिन नहीं है।

26. अम्बानी–बिड़ला रिपोर्ट इसका साक्षात उदाहरण है।

27. अरुण पाण्डेय, राष्ट्रीय सहारा में दिया गया विशेष अंक हस्तक्षेप रिपोर्ट का विश्लेषण, विश्लेषक, फरवरी 10, 2001 अंक 496

28. स्टेट वाईज एनालाईसिज आफ असैसमैन्ट रिपोर्ट, हरियाणा, 2004

29. सुभाषचन्द्र, पूर्वोक्त पृष्ठ 25

30. उपरोक्त, पृष्ठ 19

31. के.एल. जोहर, प्राईवेट इनसैन्टिव इन हायर एजुकेशन, दिल्ली 2004, पृष्ठ 50–53

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

भारत में समावेशित शिक्षा का स्वरूप

अजय कुमार सिंह*

समाज का विकास उसमें निहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमता का कुशलतापूर्वक उपभोग पर निर्भर करता है। समाज में सभी वर्ग के सहयोग के बिना पूर्ण विकास सम्भव नहीं हो सकता है। शिक्षा किसी समाज के उर्ध्वगामी विकास के सबसे महत्वपूर्ण कारक है। भारत में विकलांग लोगों की संख्या अधिक है और इनके विकास के बिना देश का पूर्ण विकास संभव नहीं है। भारत में विकलांग लोगों के लिए शिक्षा का इतिहास एक बदलते स्वरूप में उभरता हुआ दिखाई देता है। भारत की विशिष्ट शिक्षा आयामों में एक महत्वपूर्ण आयाम है- ''समावेशित शिक्षा''।

समावेशित शिक्षा का अर्थ है- ''विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यार्थियों की सभी शैक्षिक गतिविधियों में सम्मिलित करके शैक्षिक अवसर व सुविधायें उपलब्ध कराना''। भारत में समावेशित शिक्षा 21वीं शताब्दी में उभरकर सामने आ रही है। भारत में समावेशित शिक्षा व्यवस्था की शुरुआती अवस्था में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। समावेशित शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने से पहले, यहाँ विशिष्ट या विकलांग लोगों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का संक्षिप्त ऐतिहासिक स्वरूप पर चर्चा आवश्यक है। भारत में विकलांगों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को मुख्य रूप से चार प्रारूप के रूप समझ सकते हैं। पहला मानवीय प्रारूप, दूसरा जैव-केन्द्रीय प्रारूप, तीसरा कार्यकारी प्रारूप तथा चौथा मानवाधिकार प्रारूप।

पहला, मानवीय प्रारूप के अंतर्गत विकलांग लोगों को अत्यधिक संरक्षित देखभाल, अलगाव तथा उपेक्षित वातावरण में रहना पड़ता है। दुर्भाग्यवश, इस प्रारूप का अस्तित्व अभी भी कुछ व्यवहारों में खोजा जा सकता है भारत में 1997-98 के दौरान मानवाधिकार आयोग के नेतृत्व में चलाये गए परियोजना में देखा गया कि अत्यधिक

* छात्र, एम.एड., जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

संख्या में मानसिक स्वास्थ्य केन्द्रों की व्यवस्था और प्रशासन कैदी प्रारूप के आधार संचालित हैं। कैदी प्रारूप के अन्तर्गत संस्थाओं की संरचना कारागार की तरह, जिसमें ऊंची चाहरदीवारी, देखभाल करने के लिए चौकीदार, जालीदार कमरों की संरचना तथा तालों की व्यवस्था थी। दूसरा, जैव केन्द्रीय प्रारूप के अन्तर्गत विकलांगता को चिकित्सा संबंधी और अनुवांशिक दृष्टिकोण से देखा गया है। इसमें विकलांग और उसके परिवार को उभरने के लिए अथवा सामानीकरण के लिए चिकित्सा सुविधा का सहारा लेना चाहिए। यद्यपि केवल जैवविज्ञान ही विकलांगता से संबंधित समस्या को हल करने के लिए पर्याप्त नही है बल्कि कानून, नीति आदि इसके प्रमुख अस्त्र शस्त्र हैं जिनके माध्यम से विकलांगता और विकलांगता से संबंधित समस्याओं पर विजय पाया जा सकता है। (मोहित, 2003)। विकलांगों को उसके अधिकार और समाज में पूर्ण भागीदारी के लिए कानून और नीति महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तीसरा, कार्यकारी प्रारूप के अन्तर्गत अधिकार की प्राप्ति हेतु व्यक्तिगत असक्षमता और उसकी मात्रा के विभेदीकरण स्वतंत्र रूप से अधिकार के प्रयोग की चर्चा की जाती है। उदाहरणस्वरूप, एक बालक का शिक्षा का अधिकार इस बात पर निर्भर करता है कि बालक स्कूल जाकर कक्षा में भाग ले सकता है या नहीं। यहां यह सवाल उठता है कि स्कूल विकलांग बच्चों के लिए बाधाओं से मुक्त है या नहीं।

चौथा, मानवाधिकार प्रारूप के अन्तर्गत विकलांगता को मानव संस्कृति का एक महत्वपूर्ण भाग माना गया है और निश्चित किया गया है कि सभी मानव कुछ अहस्तांतरीय अधिकार के साथ जन्म लिया है। इस प्रारूप के अंतर्गत विकलांगता को मानव समुदाय के विविधता के स्वरूप की पुष्टि की जाती है। इसके अंतर्गत उस बाधाओं की पहचान की जाती है जो विकलांगता को समाज में पूर्ण भागीदारी से रोकता है। मानवाधिकार प्रारूप, विकलांगों को बाधाओं से मुक्त विद्यालय में पहुँचने में मदद करता है।

मानवाधिकार प्रारूप के अन्तर्गत समानता एक महत्वपूर्ण तथ्य है। इस प्रारूप के अंतर्गत बिना भेदभावपूर्ण तथा सकारण विभेदीकरण पर जोर दिया जाता है। विकलांग व्यक्तियों को सामान्य लोगों की तरह अधिकार प्राप्त है परन्तु सकारण विभेदीकरण मान्य है। उदाहरण स्वरूप चालक या अन्य पद पर दृष्टिहीन की नियुक्ति नहीं की जा सकती। मानवाधिकार प्रारूप के अन्तर्गत यह कहा गया है कि राज्य एक प्रमुख भूमिका निभाता है, जिससे कि विकलांग अपने अधिकार और कर्तव्य को पूर्ण रूप से प्रयोग कर सकें। शैक्षिक संस्था, उद्योग, जो सरकारी हों या व्यक्तिगत उन्हें विकलांग और सामान्य व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

भारत में समावेशित शिक्षा के पूर्व कानूनी या नीतिगत अनेक दौर आए तथा समय के साथ उनमें परिवर्तन होता गया । भारत में विकलांगों के प्रति दृष्टिकोणों में परिवर्तन वैश्विक परिवर्तन से भी प्रभावित रहा। भारत में कानूनी प्रावधानों का इतिहास जो विकलांगता से संबंधत हों उसे सार्जन्ट रिपोर्ट (1944) से प्रारंभ माना जाता है। सार्जन्ट रिपोर्ट में यह कहा गया था कि विकलांग की शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का महत्वपूर्ण भाग है। उस रिपोर्ट में यह कहा गया था कि यदि विकलांगता विशिष्ट विद्यालय के अनुकूल हो तभी विकलांग व्यक्तियों को विशिष्ट विद्यालय भेजा जाना चाहिए। कोठारी आयोग (1964-66)। जो स्वतंत्र भारत का प्रथम शिक्षा आयोग था, वह भी इस बात पर जोर दिया कि विकलांग की शिक्षा, शिक्षा नीति का अभिन्न अंग है। कोठारी आयोग एकीकृत शिक्षा का भी प्रयोग किया था (अलुर, 2002)। 1970 तक भारत में विकलांगों के प्रति 'अलगाववाद' की नीति पर आधारित शिक्षा पद्धति थी। अधिकतर शिक्षकों की यह धारणा थी कि बच्चे जो शारीरिक, मानसिक या अन्य रूप से विकलांग हो उसे सामान्य बच्चों के साथ भागीदारी करके पढ़ाया नहीं जा सकता (आडवाणी, 2002),

भारत में समावेशित शिक्षा की शुरुआत के लिए जो आधार बनाया वह था 'एकीकृत शिक्षा'। 1970 में सरकार ने जो एक योजना शुरु की वह पूर्ण रूप से केंद्र सरकार द्वारा किये गये खर्च पर आधारित थी। वह योजना ''विकलांग बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा'' (आइईडीसी) के नाम प्रसिद्ध था। यह योजना का उद्देश्य है विकलांग बच्चों को सामान्य विद्यालय में शैक्षणिक अवसर प्रदान करना और उसकी प्राप्ति और क्षमता को बढ़ाना। यह भी उद्देश्य था विकलांग बच्चों को समुदाय में सभी स्तर पर जोड़ना और उसे अपने जीवन को साहस और विश्वास से भरा जाए। आई.ई.डी.सी. का लक्ष्य विशिष्ट और सामान्य विद्यालय को जोड़ना था, जिससे कि एकीकरण प्रक्रिया मजबूत हो। 1987 में एन सी ई आर टी और यूनीसेफ के सहयोग से ''विकलांग बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा योजना'' (पी आई ई डी) जिसका उद्देश्य था– विकलांग बच्चों को सामान्य विद्यालय से जोड़ना। 1994 में मूल्यांकन के बाद देखा गया कि विकलांग बच्चों की संख्या सामान्य विद्यालयों में बढ़ी तथा विद्यालय छोड़ने की प्रवृति भी घटी थी। 1997 में आई ई डी सी को डी पी ई पी के साथ मिला दिया गया। (चड्ढा, 2002) आइ ई डी सी योजना विकलांग बच्चों के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया, जिसके अन्तर्गत विद्यालय से पूर्व प्रशिक्षण, माता-पिता को सलाह देना, कपड़े, यातायात, पाठक तथा संरक्षक, आवासीय व्यवस्था किया गया। अत्यधिक संख्या में गैर-सरकारी संगठनों ने इस कार्य में बढ़-चढ़ कर सहयोग दिया। 2002 तक एकीकृत शिक्षा को 875

विद्यालयों में शुरू किया गया, जिससे 2003 के शुरू में इस योजना से लाभान्वित बच्चों की संख्या, 1,33,000 हुई, जो 27 राज्यों और 4 केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में फैले थे।

भारत में समावेशित शिक्षा के क्षेत्र में वर्ष 2000 महत्वपूर्ण है, जब एन सी ई आर टी ने ''विद्यालय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढ़ाँचा-2000'' प्रकाशित किया। एन सी एफ एस ई - 2000 में समावेशित विद्यालय को मंजूरी दिया गया। जिसमें बिना कोई संदर्भ के कि 'विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकता' वाले छात्र या अन्य का विभाजन नहीं था। एन सी एफ एस ई में 'अलगाव' न विशिष्ट बालक के लिए और न ही सामान्य बालक के लिए अनुकूल माना गया। सामाजिक आवश्यकता के लिए विशिष्ट बालकों को भी समावेशित विद्यालय में पढ़ाया जाये, जो कम खर्चीला और प्रभावी होता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 1980 तक एकीकृत शिक्षा एक मुख्य चर्चा का विषय होता था, जब विकलांगों की शिक्षा की बात होती थी। भारत में 1970 के दशक में एकीकरण एक प्रमुख विषय था परन्तु समावेशित शिक्षा की जरूरत तब महशूश की गई जब आइ ई डी सी योजना के अंतर्गत केवल 2-3 प्रतिशत विकलांग ही एकीकरण से लाभान्वित हुए। एकीकरण की प्रक्रिया से असंतुष्ट होना समावेशित शिक्षा की ओर झुकाव को बढ़ावा दिया क्योंकि खर्च की तुलना में परिणाम कम मिला था।

भारत में समावेशित शिक्षा के लिए ''सलमानका सम्मेलन, 1994'' मील का पत्थर साबित हुआ। यह सम्मेलन जून 1994 को सलमानका में सम्पन्न हुआ, जिसमें 92 देश के सरकारी प्रतिनिधि तथा 25 अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने भाग लिया था। 'सलमानका सम्मेलन में जो मुख्य निर्णय हुआ वह था- ''सभी के लिए शिक्षा, तथा बच्चे, युवा और अन्य विशेष आवश्यकता वाले लोगों को सामान्य शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा देना''। भारत में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 2003 में समावेशित शिक्षा को परिभाषित किया गया- ''समावेशित शिक्षा का अर्थ है- सभी बालक या युवा जो विकलांग या सामान्य, एक साथ सामान्य विद्यालय में अध्ययन करे तथा समुदाय की सामान्य व्यवस्था में पूर्ण भागीदारी करें और व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकें।'' समावेशित शिक्षा, एकीकृत शिक्षा का विकसित अवस्था है। समावेशित शिक्षा और एकीकृत शिक्षा में अंतर करने का दार्शनिक आधार भी है। प्रथम, समावेशित शिक्षा सामाजिक प्रारूप व एकीकृत शिक्षा व्यक्तिगत प्रारूप पर आधारित है। दूसरा, समावेशित शिक्षा में समाज/विद्यालय से सामंजस्य हेतु परिवर्तन अपेक्षित है, वहीं एकीकृत शिक्षा में विकलांग व्यक्ति से विद्यालयानुरूप सामंजस्य हेतु परिवर्तन अपेक्षित है। एकीकृत शिक्षा में विकलांग व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को विद्यालय की

आवश्यकतानुसार अपेक्षित सुधार कर सामंजस्य स्शाापित करे, जबकि समावेशित शिक्षा में विद्यालय का उत्तरदायित्व है कि वह विकलांग विद्यार्थी की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम में अनुकूलन करे व विद्यालय के भवन व अन्य सुविधाओं को उसे उपलब्ध कराने हेतु उचित प्रबन्ध करे।

तीसरा, समावेशित शिक्षा एक लम्बी अवधि की प्रक्रिया है, जबकि एकीकृत शिक्षा एक न्यूनतम अवधि का उद्देश्य है। एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय में शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं। एकीकरण से इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि विद्यालय में विकलांग विद्यार्थी कुछ सीख पा रहे हैं या नहीं। समावेशित शिक्षा एकीकृत शिक्षा का परिमार्जित रूप है। यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें विकलांग विद्यार्थियों की भागीदारी हर स्तर पर सुनिश्चित की जाती है। चौथा, समावेशित शिक्षा में विद्यालय की क्रियात्मक भागीदारी आवश्यक है, जबकि एकीकृत शिक्षा में विकलांग व्यक्ति से क्रियात्मक भागीदारी की अधिक अपेक्षा होती है। पाँचवां, समावेशित शिक्षा में विकलांग बच्चे की विद्यालय की प्रत्येक क्रिया में भागीदारी सुनिश्चित की जाती है, जबकि एकीकृत शिक्षा विकलांग बच्चे को प्राय: विद्यालय में प्रवेश कराने तक ही सीमित रह जाती है। एकीकृत शिक्षा में विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय में प्रवेश कराना ही अंतिम उद्देश्य है। एकीकरण आंशिक भी हो सकता है और पूर्ण भी।

निष्कर्षत: भारत में शिक्षा और विशिष्ट शिक्षा समय के साथ अपने लक्ष्यों और स्वरूपों में परिवर्तनशील प्रवृत्ति प्रस्तुत करती है। भारत में विकलांगों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में भी अनेक मोड़ देखे जा सकते हैं। विश्व में विकलांगों की शिक्षा और अधिकार के लिए किये गये प्रयासों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारत पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। भारत ने अपनी नीति और कानूनों में अनेक संशोधन किए जिससे कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चलाए जा रहे प्रयासों से भारत में रह रहे विकलांगों का जीवन स्तर उँचा उठ सके। भारत सरकार विकलांगों की शिक्षा और अधिकार के लिए आर.सी. आई. एक्ट (1992), पी.डब्ल्यू.डी. एक्ट (1995), नेशनल ट्रस्ट एक्ट (1999), आदि प्रमुख कानून बनाये। भारत द्वारा ''यू.एन. कनवेन्शन ऑन दि राईट ऑफ परसन विद् डिसएबलिटिज'' पर हस्ताक्षर मार्च 2007 में किया गया तथा अक्टूबर 2007 में इसकी पुष्टि या समर्थन किया गया। इस कनवेन्शन पर हस्ताक्षर और पुष्टि करने के बाद भारत सरकार अपने कानूनी प्रावधानों को विकलांग सुलभ बनाया है। भारत सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम समावेशित शिक्षा के लिए सराहनीय कार्य है।

भारत को समावेशित शिक्षा पद्धति के विस्तार के लिए आर्थिक सामाजिक और कई प्रकार की परेशानियों से संघर्ष करना पड़ रहा है। विकलांगों में समावेशित शिक्षा पद्धति से आत्मविश्वास तथा आत्म सम्मान की भावना मजबूत होगी। समावेशित शिक्षा से सिर्फ विकलांगों को ही नहीं बल्कि सामान्य बच्चों में भी समुदायिक भावना का विकास होगा।

संदर्भ

झा, एम.एम. (2002), स्कूल विद्आउट बाल्स:इन्क्लूसिव एजूकेशन फार ऑल ऑक्सफोर्ड : हेनीमन।

पांडा, के.सी. (1997), ''एजूकेशन ऑफ एक्सेपसनल चिल्ड्रेन'', नई दिल्ली विकास पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रब्यूटर्श।

आडवाणी, एल (2002), ''एजूकेशन : ए फण्डामेंटल राईट ऑ एवरी चाईल्ड रिगार्डलेस ऑफ हिज/हर स्पेशल निड्स''। जरनल ऑफ इण्डिन एजूकेशन; स्पेशल इशूज ऑन एजूकेशन ऑफ लर्नरस विद् स्पेशल निड्स, नई दिल्ली : एनसीईआरटी

एलुर, एम. (2002) ''स्पेशल निड्स पॉलिसी इन इण्डिया'' इन एस. हेमारटी एण्ड एम. एल्यु (संपादित), एजुकेशन एण्ड चिल्ड्रेन विद स्पेशल निड्स : फ्राम सेगरेशन टू इन्क्लूजन, दिल्ली : सेज

आनन्द सी.एल., रूहेला, एस.पी. पांडा, एस.एन., एंड अरोड़ा कमला (1964), ''दि टिचर एण्ड एजुकेशन इन इमर्जिंग इण्डियन सोसायटी'' नई दिल्ली एन.सी.ई.आर.टी.।

दास, एम. (2002), ''''एजूकेशन ऑफ एक्सेपसनल चिल्ड्रेन'', नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिसर्स एण्ड डिसट्रीब्यूटर्स।

डिपार्टमेंट ऑफ एजूकेशन (2003) इनक्लूसिब एजूकेशन स्कीम (ड्राफ्ट) नई दिल्ली : एम.एस. आर.डी., जी.ओ.आई।

डिपार्टमेंट ऑफ एजूकेशन (1986) नेशनल पॉलिसी ऑन एजूकेशन, 1986, नई दिल्ली : एम. एस.आर.डी., जी.ओ.आई।

यूनेस्को (2000), इन्क्लूजन इन एजूकेशन, दि पारटिसिपेशन ऑफ डिसएबल्ड लरनर्स, वर्ल्ड एजुकेशन फोरम; एजुकेशन फॉर ऑल 2000 पेरिस – यूनेस्को।

एन.सी.ई.आर.टी. (2000), नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क फार स्कूल एजुकेशन (एन.सी.एफ. एस.ई.) नई दिल्ली : एनसीईआरटी

यूनेस्को (1994), दि सलमानका स्टेटमेंट्स एण्ड फ्रेमवर्क फार एक्शन ऑन स्पेशल निड्स एजूकेशन पेरिस – यूनेस्को।

वरनर, डी., ''डिसएबल्ड विलेज चिल्ड्रेन, बरकिले, सी.ए. : दि हेसपेरियन फॉनडेसन।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

विद्यार्थियों पर नैराश्य प्रतिक्रियाओं एवं शैक्षिक उपलब्धि का प्रभाव

श्वेता अग्रवाल* और शालिनी दीक्षित*

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ न कुछ लक्ष्य होते हैं। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल हाने पर व्यक्ति सफलता तथा असफल होने पर असफलता का सामना करता है। सफलताएं व्यक्ति में प्रेरणा एवं आत्मविश्वास उत्पन्न करतीं हैं वहीं असफलतायें कभी-कभी विभिन्न संवेगात्मक तनाव व नैराश्य उत्पन्न करती हैं।

निराशा से रहित व्यक्ति अपने व्यवहार में निम्न लक्षण प्रदर्शित करता है। वह चिन्ता से रहित व्यवहार करता है, समायोजित आत्म विश्वास से पूर्ण, आत्म नियन्त्रित, संवेगात्मक रूप से स्थिर, सार्थक जीवन जीने वाला, उच्च नैतिकता से पूर्ण तथा कार्यों में स्वयं की क्षमतानुसार उच्च स्तर की उपलब्धि प्राप्त करने वाला होता है। जबकि निराश व्यक्ति अपने जीवन में असहाय, असंतोष, अयोग्य और तनाव महसूस करता है। जिन्हें वह नैराश्य प्रतिक्रियाओं के रूप में प्रदर्शित करता है। डौलार्ड (1944) ने कहा है कि – निराशा वह दशा है जो उस समय अस्तित्व में आती है जब किसी लक्ष्य अनुक्रिया में बाधा व्याप्त हो जाती है।

व्यक्तियों की नैराश्य प्रतिक्रियाओं की तीव्रता इस बात पर निर्भर करतीं है कि निराशा उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ कितनी शक्तिशाली हैं। यह नैराश्य प्रतिक्रियायें व्यक्ति के जीवन के अनेक कारकों से सम्बन्धित हो सकती। यथा यह व्यक्ति की विभिन्न क्षेत्रों की उपलब्धियों से भी संबंधित हो सकती हैं। यह संबंध विलोमानुपातिक व समानुपातिक,

* शोधार्थी, शिक्षा संकाय, दयालबाग शिक्षा संस्थान, आगरा

दोनों में से कुछ भी हो सकता है। लेकिन यदि व्यक्ति यह ज्ञात कर ले कि नैराश्य प्रतिक्रियाओं के उत्पन्न होने के कारण क्या-क्या हो सकते हैं व साथ ही इन कारणों के निवारण के तरीकों को जान ले तो निश्चय ही व्यक्तियों की नैराश्य प्रतिक्रियाओं को कम करने में अत्यधिक सहायता मिलेगी साथ ही उपलब्धियों के अनुसार परिस्थितियों को उत्पन्न किया जा सकेगा।

अत: नैराश्य से उत्पन्न होने वाली हताशा के प्रभाव को देखते हुए शोधार्थी ने यह अनुभव किया कि सभी व्यक्तियों को नैराश्य प्रतिक्रियाओं के शैक्षिक उपलब्धियों पर पड़ने वाले प्रभाव व संबंध का ज्ञान होना आवश्यक है। साथ ही यह ज्ञान भी आवश्यक है कि कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की नैराश्य प्रतिक्रियाएं उनकी शैक्षिक उपलब्धि को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। साथ ही दोनों वर्गों के विद्यार्थियों की नैराश्य प्रतिक्रियाओं में क्या विभिन्नता पाई जाती है? यह कुछ प्रश्न एवं जिज्ञासायें थीं जिनके समाधान हेतु प्रस्तुत अध्ययन किया गया।

समस्या कथन

कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की नैराश्य प्रतिक्रियाओं एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य

1. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर आक्रामकताओं, नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर परित्याग और नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर स्थिरीकरण और नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर प्रतिगमन और नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

1. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की नैराश्य प्रतिक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर आक्रामकता और नैराश्य प्रतिक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर परित्याग और नैराश्य प्रतिक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
4. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर स्थिरीकरण और नैराश्य प्रतिक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
5. कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर प्रतिगमन और नैराश्य प्रतिक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श चयन

प्रस्तुत शोध अध्ययन में आगरा शहर के उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित तीन कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को सौद्देश्य विधि द्वारा चयनित किया तथा अन्तिम रूप से चयनित विद्यालयों की कक्षा 11वीं में अध्ययनरत छात्राओं को प्रतिदर्श चयन की आकस्मिक विधि से प्रतिदर्श के रूप में कला एवं विज्ञान वर्ग की 60-60 अर्थात कुल 120 छात्राओं को चयनित किया गया।

उपकरण

शोध के सन्दर्भ में संबंधित प्रदत्तों के संकलन हेतु बी.एम. दीक्षित एवं डी.एन. श्रीवास्तव (1987) द्वारा निर्मित रियेक्शन टू फ्रास्ट्रेशन स्केल का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन के संदर्भ में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक सांख्यिकीय

प्रविधियों में मध्यमान एवं मानक विचलन तथा निर्वचनात्मक सांख्यिकीय प्रतिविधियों में टी-अनुपात मान एवं काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं विवेचन

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन

उपरोक्त उद्देश्य हेतु सर्वप्रथम प्रदत्त एकत्रित किये गए तत्पश्चात कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की चारों प्रकार की नैराश्य प्रतिक्रियाओं के मध्यमान, मानक विचलन व टी मान ज्ञात किये गए। जिन्हें तालिका-1 में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका-1

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की नैराश्य प्रतिक्रियाओं के मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात मान

क्र. सं.	नैराश्य प्रतिक्रियाएं	कला वर्ग		विज्ञान वर्ग		टी मूल्य
		मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
1.	आक्रामकता	17.83	7.25	22.50	6.80	3.66**
2.	परित्याग	23.75	7.46	23.08	7.30	0.50*
3.	स्थिरीकरण	29.83	7.08	26.08	6.80	2.93**
4.	प्रतिमान	37.50	6.44	35.75	5.95	1.56*

df = 119 *0.05 सार्थकता स्तर **0.01 सार्थकता स्तर

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि कला एवं विज्ञान वर्ग के छात्राओं की आक्रामकता एवं स्थिरीकरण प्रवृत्ति में सांख्यिकीय रूप से सार्थक अन्तर होता है। विज्ञान वर्ग की छात्रायें कला वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा उच्च

आक्रामकता प्रवृत्ति को प्रदर्शित करती हैं जबकि विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा कला वर्ग की छात्राओं में स्थिरीकरण प्रवृत्ति उच्च स्तर की होती है विज्ञान वर्ग में सम्मिलित विषयों का कठिनता स्तर कला वर्ग के विषयों के अपेक्षा अधिक होता है जिसके परिणाम स्वरूप विज्ञान वर्ग की छात्राओं में अधिक तनाव होता है तथा वह इस तनाव से मुक्त होने में असफल होने पर अधिक आक्रामकता प्रवृत्ति को प्रदर्शित करती हैं। जबकि कला वर्ग में सम्मिलित होने वाले विषयों में विज्ञान वर्ग में सम्मिलित होने वाले विषयों की अपेक्षा कम व धीमी गति से परिवर्तन आते हैं। जिसके कारण कला वर्ग की छात्राएं उच्च स्थिरीकरण की प्रवृति को प्रदर्शित करती हैं।

जबकि कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की परित्याग एवं प्रतिगमन नैराश्य प्रतिक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं होता अर्थात कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राएं सामान्य तौर पर सामाजिक संबंधों एवं वातावरण के प्रति रूचि को सामान्य रूप में प्रदर्शित करती हैं। एवं विफलताप्रद परिस्थितियों से बचाव की समान प्रवृत्ति प्रदर्शित करती हैं यथा दोनों वर्गों की छात्राएं समान विकसित अवस्था में होने के कारण लगभग समान प्रतिगमन नैराश्य प्रतिक्रिया को प्रदर्शित करती हैं। इनका एक कारण यह हो सकता है कि यह दोनों ही किशोर अवस्था की प्रवृति से प्रेरित होती हैं।

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर आक्रामकता नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन

दोनों वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर आक्रामकता नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु सर्वप्रथम शोद्यार्थी ने प्रसम्भाव्यता वितरण को आधार मानकर शैक्षिक उपलब्धि को तीन स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न स्तर) में विभक्त किया। तत्पश्चात प्रदत्त एकत्रित किये गए एवं सांख्यकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया जिन्हें तालिका–2 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका-2

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर एवं आक्रामकता नैराश्य प्रतिक्रियाओं के मध्यमान, मानक विचलन व टी-मान

क्र. सं.	शैक्षिक उपलब्धि स्तर	आक्रामकता नैराश्य प्रतिक्रियाएं									
		कला वर्ग					विज्ञान वर्ग				
		छात्राओं की सं.	मध्यमान	मानक विचलन	डीएफ	टी मान	छात्राओं की सं.	मध्यमान	मानक विचलन	डीएफ	टी मान
1.	उच्च	10	15.50	4.20	53	3.85**	9	21.11	9.15	52	0.99*
	मध्यम	45	18.78	1.52			45	22.56	1.25		
2.	मध्यम	45	18.78	1.52	48	4.52**	45	22.56	1.25	49	0.07*
	निम्न	5	13.40	6.41			6	22.50	3.82		
3.	उच्च	10	15.50	4.20	13	0.71*	9	21.11	9.15	13	0.32*
	निम्न	5	13.40	6.41			6	22.50	3.82		

*0.05 सार्थकता स्तर **0.01 सार्थकता स्तर

तालिका-3

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि स्तर एवं परित्याग नैराश्य प्रतिक्रियाओं के मध्यमान, मानक विचलन व टी-मान

क्र. सं.	शैक्षिक उपलब्धि स्तर	परित्याग नैराश्य प्रतिक्रियाएं									
		कला वर्ग					विज्ञान वर्ग				
		छात्राओं की सं.	मध्यमान	मानक विचलन	डीएफ	टी मान	छात्राओं की सं.	मध्यमान	मानक विचलन	डीएफ	टी मान
1.	उच्च	10	26.70	7.59	53	2.57**	9	26.44	7.06	52	3.18**
	मध्यम	45	23.11	1.41			45	22.67	1.50		
2.	मध्यम	45	23.11	1.41	48	0.51**	45	22.67	1.50	49	1.17*
	निम्न	5	22.40	8.16			6	23.67	3.86		
3.	उच्च	10	26.70	7.59	13	0.94*	9	26.44	7.06	13	0.82*
	निम्न	5	22.40	8.16			6	23.67	3.86		

*0.05 सार्थकता स्तर **0.01 सार्थकता स्तर

तालिका–2 के गहन अवलोकन करने पर विदित होता है कि कला वर्ग की उच्च एवं मध्यम तथा मध्यम एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं की आक्रामकता प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर प्रदर्शित नहीं हैं। साथ ही कला वर्ग की उच्च शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्रायें अपने लक्ष्य व कार्य को महत्व देने के कारण आक्रामक परिस्थिति पर कम ध्यान देती हैं और साथ ही निम्न उपलब्धि स्तर की छात्रायें विफलताप्रद परिस्थिति पर कम ध्यान देती हैं जबकि निम्न उपलब्धि स्तर की छात्रायें अधिक आक्रामक प्रवृत्ति प्रदर्शित करती हैं। लेकिन विज्ञान वर्ग की सभी शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्रायें लगभग समान आक्रामक प्रवृत्ति प्रदर्शित करतीं हैं। अत: इन की आक्रामक प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर परित्याग नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक

तालिका–3 का ध्यान पूर्वक अवलोकन करने पर विदित होता है कि दोनों वर्गों की उच्च एवं मध्यम शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं की परित्याग प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर है जबकि मध्यम एवं निम्न तथा उच्च एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं की परित्याग प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं है यथा दोनों वर्गों की उच्च शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्रायें अन्य दोनों शैक्षिक उपलब्धि स्तरों की छात्राओं की अपेक्षा विफलताप्रद परिस्थिति में पलायन प्रवृत्ति को अधिक प्रदर्शित करती हैं लेकिन इसे तर्क की कसौटी पर कसने से विदित होता है कि दोनों वर्गों की उच्च शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्रायें विफलताप्रद परिस्थिति का दृढ़ता पूर्वक सामना करतीं हैं। अत: इन छात्राओं की जो उच्च परित्याग प्रवृत्ति दृष्टिगोचर है वह वास्तविक रूप में न होकर संयोगवश प्राप्त हुई है।

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर स्थिरीकरण नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका–4 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कला वर्ग की उच्च एवं मध्यम तथा

उच्च एवं निम्न जबकि विज्ञान वर्ग की केवल उच्च एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं की स्थिरीकरण प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं होता है। परन्तु कला वर्ग की मध्यम एवं निम्न तथा विज्ञान की उच्च एवं मध्यम व मध्यम एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं की स्थिरीकरण प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर होता है। अत: विदित होता है कि दोनों वर्गों में उच्च शैक्षिक स्तर वाली छात्रायें शिक्षा को अधिक महत्व देने के कारण नवीन रूचियों को अपनाने तथा नवीन संबंधों को विकसित करने की प्रवृत्ति कम रखती हैं जबकि निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं में इसके विपरीत दशा पाई जाती है। परन्तु कला वर्ग की उच्च एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं की स्थिरीकरण प्रवृत्ति में जो अन्तर दृष्टिगोचर होता है वह वस्तुत: प्रतिदर्श चयन एवं उसके सीमित संख्या में होने के कारण संयोगवश उत्पन्न हो गया है।

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि स्तर के आधार पर प्रतिगमन नैराश्य प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका-5 का पुन: अवलोकन करने पर विदित होता है कि कला वर्ग की उच्च एवं मध्यम व उच्च एवं निम्न तथा विज्ञान वर्ग की मध्यम एवं निम्न एवं उच्च एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं की प्रतिगमन प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं होता है जबकि कला वर्ग की मध्यम एवं निम्न तथा विज्ञान वर्ग की उच्च एवं मध्यम शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्राओं की प्रतिगमन प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर होता है। साथ ही तालिका द्वारा यह भी विदित होता है कि दोनों वर्गों की उच्च शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्रायें उच्च प्रतिगमन प्रवृत्ति प्रदर्शित करती हैं। लेकिन इसे तर्क की कसौटी पर कसने से स्पष्ट होता है कि वे छात्रायें जिनकी उच्च शैक्षिक उपलब्धि होती है वह अपने अथााह ज्ञान भण्डार के कारण रक्षा युक्ति के रूप में अपरिपक्व प्रतिक्रियाओं को कम अपनाती हैं जबकि निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाली छात्राएं अधिक अपनाती हैं। अत: इनकी जो उच्च प्रतिगमन प्रवृत्ति प्राप्त हुई है वह वास्तविक न होकर प्रतिदर्श चयन एवं उसके सीमित संख्या में होने के कारण संयोगवश प्राप्त हुई है।

शोध उपलब्धियां

प्रस्तुत शोध कार्य की उपलब्धियां इस प्रकार हैं-

1. विज्ञान वर्ग की छात्राओं के आक्रामकता प्रवृत्ति एवं कला वर्ग की छात्राओं में

तालिका-4

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि स्तर एवं स्थिरीकरण नैराश्य प्रतिक्रियाओं के मध्यमान, मानक विचलन व टी-मान

क्र. सं.	शैक्षिक उपलब्धि स्तर	स्थिरीकरण नैराश्य प्रतिक्रियाएं									
		कला वर्ग					विज्ञान वर्ग				
		छात्राओं की सं.	मध्यमान	मानक विचलन	डीएफ	टी मान	छात्राओं की सं.	मध्यमान	मानक विचलन	डीएफ	टी मान
1.	उच्च	10	30.50	7.35	53	0.94**	9	29.11	7.99	52	2.74**
	मध्यम	45	29.20	1.41			45	25.66	1.34		
2.	मध्यम	45	29.20	1.41	48	4.58**	45	25.66	1.34	49	2.30*
	निम्न	5	33.80	5.04			6	24.00	2.52		
3.	उच्च	10	30.50	7.35	13	0.84*	9	29.11	7.99	13	1.41*
	निम्न	5	33.80	5.04			6	24.00	2.52		

*0.05 सार्थकता स्तर **0.01 सार्थकता स्तर

तालिका-5

कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि स्तर एवं प्रतिगमन नैराश्य प्रतिक्रियाओं के मध्यमान, मानक विचलन व टी-मान

क्र. सं.	शैक्षिक उपलब्धि स्तर	प्रतिगमन नैराश्य प्रतिक्रियाएं									
		कला वर्ग					विज्ञान वर्ग				
		छात्राओं की सं.	मध्यमान	मानक विचलन	डीएफ	टी मान	छात्राओं की सं.	मध्यमान	मानक विचलन	डीएफ	टी मान
1.	उच्च	10	39.70	5.98	53	1.11*	9	38.78	5.22	52	3.86**
	मध्यम	45	38.00	1.15			45	35.11	1.10		
2.	मध्यम	45	38.00	1.15	48	4.78**	45	35.11	1.10	49	0.45*
	निम्न	5	33.20	5.64			6	34.50	8.46		
3.	उच्च	10	39.70	5.98	13	1.88*	9	38.78	5.22	13	1.13*
	निम्न	5	33.20	5.64			6	34.50	8.46		

*0.05 सार्थकता स्तर **0.01 सार्थकता स्तर

स्थिरीकरण प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है जबकि परित्याग व प्रतिगमन प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

2. शैक्षिक उपलब्धि में परिप्रेक्ष्य में देखने पर दृष्टिगोचर होता है कि दोनों वर्गों की उच्च शैक्षिक उपलब्धि स्तर प्राप्त करने वाली छात्राओं में नैराश्य प्रतिक्रियायें प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति कम रखती हैं क्योंकि ये छात्रायें अपनी शिक्षा को अधिक महत्व देने के कारण नैराश्यप्रद परिस्थितियों पर कम ध्यान देती हैं। जबकि मध्यम एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की छात्रायें अधिक नैराश्य प्रतिक्रियायें प्रदर्शित करतीं हैं।

3. उच्च शैक्षिक उपलब्धि स्तर की कला वर्ग की छात्रायें विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा आक्रामकता प्रवृत्ति को कम प्रदर्शित करतीं हैं जबकि परित्याग, स्थिरीकरण एवं प्रतिगमन प्रवृत्तियों को अधिक प्रदर्शित करतीं हैं।

4. मध्यम शैक्षिक उपलब्धि स्तर की विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा कला वर्ग की छात्रायें आक्रामकता प्रवृत्ति को कम प्रदर्शित करतीं हैं जबकि परित्याग, स्थिरीकरण एवं प्रतिगमन प्रवृत्तियों को अधिक प्रदर्शित करतीं हैं।

5. निम्न शैक्षिक उपलब्धि स्तर की कला वर्ग की छात्राएं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा आक्रामकता परित्याग, एवं प्रतिगमन प्रवृत्तियों को कम प्रदर्शित करतीं हैं लेकिन स्थिरीकरण प्रवृत्तियों को अधिक प्रदर्शित करतीं हैं।

व्यावहारिक शैक्षिक सुझाव

अभिभावक वर्ग हेतु : अभिभावकों को बालक–बालिकाओं को तनाव रहित वातावरण, कुछ मात्रा में स्वतंत्रता, स्वयं निर्णय लेने हेतु प्रोत्साहन, स्वास्थ्य के प्रति सचेत, व्यर्थ की नवीन रूचियों व संबंधों को स्थापित करने से रोकना परिपक्वता पूर्ण व्यवहार करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे बालक–बालिकाऐं अपनी ऊर्जा को उपयोगी कार्यों में लगायें, धनात्मक दृष्टिकोण का विकास करें, समय व्यर्थ नहीं करें तथा आयु के अनुसार परिपक्व व्यवहार करेंगे। इसके परिणाम स्वरूप चारों नैराश्य प्रतिक्रियायें कम प्रदर्शित करेंगे

शिक्षक वर्ग हेतु : बालक-बालिकाओं में नैराश्य प्रवृत्तियों को कम करने हेतु शिक्षकों को चाहिए कि वह विद्यालय व कक्षा कक्ष की शैक्षिक व्यवस्था में व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखें, वाद-विवाद एवं संगोष्ठी का अयोजन करें (विशेषकर विज्ञान वर्ग हेतु जिससे इस वर्ग के विद्यार्थियों की उच्च आक्रामक प्रवृत्ति कम हो सकेगी), विद्यार्थियों में सघर्ष की स्थिति को दृढ़ता से सामना करने की क्षमता विकसित करें (जिससे परित्याग प्रवृत्ति कम हो सके) नवीन रूचियों, नवीन संबंधों को स्थापित करने के अवसर दें (विशेषकर कला वर्ग के विद्यार्थियों को उनकी उच्च स्थिरीकरण प्रवृत्ति को कम करने हेतु) तथा विद्यार्थियों को उनकी क्षमता अनुसार उत्तरदायित्व प्रदान करने (जिससे अपरिपक्व प्रतिक्रियायें कम हो सकें)। अर्थात दोनों वर्गों से संबंधित शिक्षकों को विद्यार्थियों की नैराश्य प्रवृत्तियों को कम करने हेतु संबंधित वर्ग के विद्यार्थियों की प्रकृति को ध्यान में रखना अत्यधिक आवश्यक है। अत: जिससे वह (शिक्षक) अपने कार्य में पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त कर सकें।

संदर्भ

बैलजनो, फ्रेडविका (1994) वूमेन, रेस जैन्डर ऑफ फ्रस्ट्रेटर एंड रिलेशन टू फ्रस्ट्रेशन, डिजट्रेशन ऐबस्ट्रेक्टस इन्टरनेशनल, पृ.सं. 13

दीक्षित, बी.एम. एंड श्रीवास्तव, डी.एन. (1987) मैनुअल फोर रियेक्शन टू फ्रस्ट्रैशन स्केल, नेशनल साइकोलोजी, कॉरपोरेशन, आगरा

डंगवाल, किरन, लता (2000) कक्षा पंचम के विद्यार्थियों में कुण्ठा प्रतिक्रिया तथा शैक्षिक उपलब्धि में संबंध का अध्ययन, एस.एस. श्रीवास्तव (संपादक) में, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ : इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 19 (2), पृ.सं. 16-19

ज्ञानानी, टी.सी. (1984) विभिन्न आयु स्तरों पर कुण्ठा प्रतिक्रियाएं उपलब्धि प्रेरणा तथा चिन्ता का फलन, प्रकाशित पी-एच.डी. शोध प्रबंध, डी.ई.आई. दयालबाग, आगरा

ज्ञानानी टी.सी. (1996) शैक्षिक पीढ़ी अन्तराल के परिप्रेक्ष्य में पिछड़े वर्ग के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ : इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 15(2)।

मालवीय, दीपा (1988) रियेक्शन टू फ्रस्ट्रेशन, नई दिल्ली : डी.एम. पब्लिशर्स, पृ.सं. 18-25

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण के बारे में अध्यापिकाओं का दृष्टिकोण और महिला संरक्षण नियम का प्रभाव

कुमुद त्रिपाठी*

सारांश

''घरेलू हिंसा से महिलाओं का सरंक्षण विधेयक, 2005 की धारा 37 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अक्टूबर 2006 के छब्बीसवें दिन घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम, 2006 पारित हुआ, जिसे पढ़कर जिज्ञासावश शोधकर्त्ता ने इसके प्रति शिक्षित महिलाओं का शिक्षित जानना चाहा जिसके लिए 40 कथनों की तीन बिंदु मापनी (सहमत, अनिश्चित व असहमत) का निर्माण किया गया और जौनपुर जनपद में अध्यापनरत् प्राथमिक स्तर की 200, माध्यमिक स्तर की 200 और उच्च शैक्षिक परिवेश की 200 शिक्षिकाओं का चयन/स्तरीकृत यादृच्छिक न्यायदर्श प्रविधि द्वारा किया। इनके विचार विश्लेषण में 'टी' परीक्षण का सहारा लिया गया, जिसका आधार 0.05 सार्थकता स्तर का था और यह पाया कि सभी स्तरों पर बनी शून्य परिकल्पनाएं स्थापित हुयीं, जिससे स्पष्ट हुआ कि शिक्षित महिलाएं ग्रामीण/शहरी या किसी भी स्तर (प्राथ, माध्य, उच्च) की है, सरकार द्वारा बनाये इस अधिनियम का स्वागत करती हैं''

प्रस्तावना

शोधकर्त्ता ने भारत का राजपत्र भाग–2, खण्ड–3 को देखा जो पारूल, देबीदास संयुक्त सचिव द्वारा 19.03.05 को जारी किया गया था।

* रीडर, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह पी.जी.टी. कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ.प्र.)

कर0 आ0 1776(अ) –घरेलू हिंसा से महिलाओं का सरंक्षण विधेयक, 2005 (2005या43) की धारा 1को उपभाग (3) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार इसके द्वारा अक्टूबर, 2006 के छब्बीसवें दिन को ऐसी तारीख नियत करती हैं, जिससे उक्त अधिनियम प्रवृत्त होगा।

–(सं0 19–3–2005–WW)

उपरोक्त संयुक्त सचिव द्वारा जारी नियम देखते ही शोधकर्त्ता ने महसूस किया कि जगत् गुरुओं का देश कहे जाने वाले भारतवर्ष में नारियों के अस्तित्व की सुरक्षा अब हो सकेगी, क्योंकि नारी सशक्तिकरण जैसे प्रोग्राम अब इनमें आत्मबल का विकास कर सकते हैं। इस देश में नारी को मानव की जननी, परिवार की आधारभूत ईकाई और दो पीढ़ियों को जोड़ने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी माना जाता रहा है, इसीलिए भारतीय समाज व संस्कृत में इनको महत्व प्रदान करते हुए कहा गया है कि – ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'' इसके अतिरिक्त स्त्रियों के धैर्य सहनशीलता , प्रेम, अनुराग, सहानुभूति और उदारता आदि कुछ आदर्शभूत और अनुकरणीय गुणों को ध्यान में रखते हुए सर्वनियंता भगवान की शक्तियों का लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली आदि का नारी रूपों में ही वर्णन किया गया है।

महिलाओं ने कुछ विवादित एवं संक्रमणशील कालों एवं समयों को छोड़कर हमेशा से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी स्तरों पर बढ़–चढ़कर अपना अप्रतिम योगदान किया है। किसी भी इतिहास प्रसिद्ध पुरुष की सफलता के पीछे महिलाओं का ही योगदान रहा है। सम्पूर्ण विश्व की आबादी का लगभग (आधा) भाग होने के बावजूद भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति के इतिहास में स्त्रियों की स्थिति एक लम्बे समय से विवाद का विषय रही है। वैश्वीकरण के इस वर्तमान युग में जबकि दुनिया के अधिकांश देशों में लोकतांत्रिक, संवैधानिक और मानवीय दृष्टि से समानता कायम करने के अनेक प्रयास हो रहे हैं। तथापि भारत सहित विश्व के अधिकांश देशों में स्त्रियों की प्रस्थिति को लेकर सिद्धांत और व्यवहार में महत्वपूर्ण अंतर देखने को मिला है। जिसके समर्थक अध्ययन हैं, जिनमें प्रमुख अग्रवाल (2001), सुषमा (2005), सिंह (2004), श्यामा देवी (2007),द्विवेदी (2006), तथा पासी (2007), के थे।

द्विवेदी (2006) ने तो अपने अध्ययन ''वैश्वीकरण के दौर में महिलाओं की स्थिति'' पर यह व्याख्या प्रस्तुत की थी कि ''वैश्वीकरण से उद्भूत व्यक्तिवादी,

भौतिकवादी मनोवृत्तियों एवं भावनाओं ने आज की महिलाओं को इतना महत्वाकांक्षी, स्वार्थी, मक्कार और कृत्रिमतापूर्ण आचरण करने वाली महिलाओं के रूप में परिवर्तित कर दिया है कि, वर्तमान समय में भारत का आदर्श समझी जाने वाली नारियों-सती अनुसूइया, सीता, गार्गी, सावित्री, सुनयना, मन्दोदरी आदि जैसी चरित्रवान महिला होने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वर्तमान समय में प्रिंट मीडिया-पत्र/पत्रिकाओं, विज्ञापनों, चलचित्रों एवं दूरदर्शन से प्रसारित किये जाने वाले विविध लोकप्रिय धारावाहिकों में महिलाओं की भूमिका, चरित्र, मनोवृत्ति, वेशभूषा, राकपॉप-डाक तथा एलबमों में रीमिक्स गीतों में मनोरंजन के नाम पर महिलाओं के नग्न, अश्लील एवं उत्तेजक प्रदर्शनों पर यदि हम दृष्टिपात करें तो हमें महिलाओं का जो दोहरा चरित्र दिखाई देता है, उसे वैश्वीकरण की अप्रतिम देन कहा जा सकता है।''

प्राचीन तथा अर्वाचीन भारतीय नारी अर्थात् देव युग व वैश्वीकरण के युग की नारियों के संतुलन में अधिनियम, आरक्षण और इससे आगे भी किये जाने वाले प्रयास कहाँ तक सार्थक होंगे, इसी क्रम में शोधकर्त्ता का प्रस्तुत अध्ययन है जो केवल अधिनियम पर शिक्षित नारियों के दृष्टिकोण पर ही केन्द्रित था, जिसके अन्य आयाम अधोलिखित थे :

उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित तीन उद्देश्य निर्धारित किय गये थे:

1. प्राथमिक स्तर पर शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
3. उच्च शैक्षिक स्तर पर शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया था।

1. प्राथमिक स्तर पर ग्रामीण और शहरी शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण के बीच सार्थक अंतर नहीं है।

2. माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण और शहरी शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण के बीच सार्थक अंतर नहीं है।
3. उच्च शैक्षिक स्तर पर ग्रामीण और शहरी शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण के बीच सार्थक अंतर नहीं है।

शोध उपकरण

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम 2006 के प्रति दृष्टिकोण मापनी का निर्माण शोधकर्त्ता ने स्वयं विकसित किया जिसमें कुल 100 कथनों का निर्माण किया था, और तकनीकी विशेषताओं 'टी' मूल्य के आधार पर कुल 40 कथन चयनित हुये जिनमें कुल 18 कथन नकारात्मक और 22 कथन सकारात्मक थे। यह मापनी तीन बिंदुओं (सहमत अनिश्चित व असहमत) वाली थी, जिनके भारांक सकारात्मक कथनों के लिए 2,1,0, तथा नकारात्मक कथनों के लिए 0,1,2 था। इसकी परीक्षा पुन:परीक्षा विधि से विश्वसनीयता गुणांक 0.82 तथा वैधता गुणांक विषय विशेषज्ञों के साथ 0.91 पायी गयी थी, तथा व्याख्यात्मक मानक प्रतिशतांक था।

प्रथम उद्देश्य से संबंधित विश्लेषण एवं व्याख्या

शोधकर्त्ता ने प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रथम उद्देश्य –''प्राथमिक स्तर पर शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।'' निर्धारित किया था जिसके परिक्षण हेतु शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी, कि ''प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं की घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण के बीच कोई सार्थक अंतर नहीं है।''

प्राथमिक स्तर के शिक्षिकाओं की विचार विश्लेषण तालिका

उपरोक्त विलेषण तालिका से स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर पर ग्रामीण शिक्षिकाओं के मध्यमान 49.74 और मानक विचलन 9.007 तथा शहरी शिक्षिकाओं के मध्यमान 51.92 तथा मानक विचलन 6.554 थे, जिसके बीच टी विश्लेषण मूल्य 1.384 थे जो df. (198) के 0.05 सार्थकता स्तर के 1.97 से कम था, जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना स्थापित हो गयी और यह स्पष्ट हो गया कि इस अधिनियम के प्रति प्राथमिक स्तर की महिला शिक्षक एकमत हैं।

द्वितीय उद्देश्य से संबंधित विश्लेषण एवं व्याख्या

शोधकर्त्ता ने प्रस्तुत अध्ययन का द्वितीय उद्देश्य ''प्राथमिक स्तर पर शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।'' निर्धारित किया था जिसके लिए शून्य परिकल्ना बनायी गयी थी, कि ''माध्यमिक स्तर पर शिक्षिकाओं की घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति दृष्टिकोण के बीच कोई सार्थक अंतर नहीं है।''

माध्यमिक स्तर के शिक्षिकाओं की विचार विश्लेषण तालिका

उपरोक्त विलेषण तालिका से स्पष्ट है कि घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम के प्रति माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण व शहरी शिक्षिकाओं के मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः (48.4, 51.08) तथा (9.738, 8.2006) था, जिसके अभिकल्पित 'टी' मूल्य 1.05 सार्थकता स्तर 0.05 के 1.97 से कम था, जिससे शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुयी और स्पष्ट हुआ कि दोनों समूह इस अधिनियम के लिए मध्यामिक स्तर पर समान हैं।

तृतीय उद्देश्य से संबंधित विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन का तीसरा उद्देश्य – ''उच्च शैक्षिक स्तर पर शिक्षिकाओं के घरेलू महिला हिंसा अधिनियम 2006 के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।'' निर्धारित किया था जिसके लिए शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी, कि '' ग्रामीण व शहरी शिक्षिकाओं के दृष्टिकोण के बीच इस स्तर पर कोई सार्थक अंतर नहीं है।'' जिसके परीक्षण हेतु अधोलिखित तालिका –3 बनायी गयी ।

उच्च शैक्षिक स्तर की शिक्षिकाओं की विचार विश्लेषण तालिका

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि उच्च शैक्षिक स्तर पर ग्रामीण व शहरी शिक्षिकाओं के घरेलू हिंसा महिला अधिनियम के प्रति दृष्टिकोण के माध्य 52.52 और 51.39 तथा मानक विचलन क्रमशः 5.262 तथ 7.583 था, जो निर्धारित df.(198) के 0.05 सार्थकता स्तर 1.97 से अभिकलित 't' का मूल्य 0.61 कम था जिससे शून्य परिकल्पना स्थापित हुई और यह स्पष्ट हुआ कि उच्च शैक्षिक स्तर पर दोनों समूल घरेलू महिला हिंसा अधिनियम 2006 के प्रति दृष्टिकोण में समानता बनाये हुए हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध से निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि घरेलू महिला हिंसा अधिनियम 2006 के प्रति शिक्षिकाओं के दृष्टिकोण सभी स्तरों पर समान है और वे इस अधिनियम का स्वागत करती हैं।

सदंर्भ

अग्रवाल शशि (2005): 'नारी सशक्तिकरण' प्रशिक्षण प्रोग्राम निपसिड द्वारा आयोजित बी.एच.यू. वीमेन स्टडी सेंटर।

देवी श्यामा (2007): नारी हिंसा अधिनियम 2006 के आलोचनात्मक अध्ययन शिक्षा, संकाय बी.ब. सिंह पू. वि. वि. जौनपुर।

द्विवेदी आलोक (2006): वैश्वीकरण के दौर में महिलाओं की स्थिति, राष्ट्रीय संगोष्ठी 11-1279-2006 सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर।

पासी, सोहन सरोज (2007): ''नारी हिंसा अधिनियम के प्रति दृष्टिकोण मापन'' लघु शोध प्रबंध शिक्षा संकाय, बी.व सिंह पू. वि. वि. जौनपुर।

भारत का राजपत्र (2006): महिला और बाल विकास मंत्रालय अधिसूचना, नई दिल्ली 17 अक्टूबर, 2006

सिंह के.के. (2004): नारी सशक्तिकरण, उपनिदेशक निपसिड, नई दिल्ली।

सुषमा (2005): नारी अभद्र व्यवहार का एक समाजवैज्ञानिक अध्ययन, निपसिड, नई दिल्ली।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिकता में 'विशेषकर बालिका शिक्षा में' अपव्यय एवं अवरोधन

रीता अवस्थी* और उमाशंकर पाण्डे**

शिक्षा का प्रथम सोपान प्राथमिक शिक्षा से प्रारंभ होता है। कोई भी समाज शिक्षा की अनदेखी करके आगे नहीं बढ़ सकता है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र की आधारशिला है, यह बालक-बालिकाओं को देश के प्रति कर्तव्यबोध कराती है। शिक्षा हमें अंधकार रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा अज्ञान से मुक्ति दिलाती है और सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है। हमारी आंतरिक प्रवृत्तियों को जागृत करना और सशक्त बनाना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है। शिक्षा के द्वारा ही हम सुखी, संतुष्ट और स्वतंत्र रहने की कला सिखा सकते हैं। इससे हमें एक आत्मावलंबी नागरिक बनने में हमें सहयोग प्राप्त होता है। शिक्षा का मौलिक उद्देश्य डिग्रियाँ प्राप्त करना नहीं वरन् उसका उद्देश्य है- शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना। एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना, जो आत्म सम्मान से युक्त हो तथा दूसरों का सम्मान करने वाली हो।

राष्ट्रीय निर्माण एंव संतुलित आर्थिक-सामाजिक विकास के अपने दायित्व के चलते आज शिक्षा, एक प्राथमिकता बनकर उभरी है। वर्तमान औद्योगीकरण की प्रक्रिया में देश की संलग्नता और उसकी वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण के प्रयास में उच्च गुणवत्ता वाली बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता है जिसमें गावों तक शिक्षा में उच्च नामांकन दर एवं कार्यशील व्यवस्था हो। शिक्षा मानव विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि होने के साथ बुनियादी मानव अधिकार भी है। अत: यह

* संविदा व्याख्याता, शिक्षा विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर (म.प्र.)
** क्षेत्रीय निदेशक, 'इग्नू' क्षेत्रीय शिक्षा केंद्र जबलपुर (म.प्र.)

प्रत्येक भारतीय के लिए होनी चाहिए। जाति एवं वर्गों के पदानुक्रम में विभक्त हमारे समाज में शिक्षा पाने के अवसर असमान हैं। पुरातन काल के दौरान तथाकथित उच्च जातियाँ जो बेहतर आर्थिक शक्तियों से संपन्न थीं, उनका शिक्षा के क्षेत्र में एकाधिकार था। जबकि निम्न जातियाँ विशेषत: अनुसूचित जाति एवं जनजातियाँ पूर्ण रूपेण वंचित रहीं।

यद्यपि इस दिशा में परिवर्तन राष्ट्रीय नेताओं के प्रयासों से काफी पहले ही आरंभ हो चुके थे। उसमें से दादाभाई नौरोजी प्रमुख थे जिन्होंने भारत के प्रथम शिक्षा आयोग (हण्टर कमीशन) के समक्ष इस बात की मांग की कि सभी भारतीय बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की दिशा में कदम उठाये जाने चाहिए।

भारतीय अर्थ व्यवस्था का एक दुखद पहलू यह है कि मानव विकास के क्षेत्र में विशेषत: शिक्षा में स्थिति दयनीय है। भारतीय गणतंत्र की स्थापना से लेकर अब तक शिक्षा की प्रगति खासतौर पर प्राथमिक शिक्षा में बहुत धीमी है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 296 मिलियन 2960 लाख लोग निरक्षर हैं। वर्तमान में प्रांरभिक शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता का मुद्दा महत्वपूर्ण रहा है। केवल विद्यालय की उपलब्धता ही पर्याप्त नहीं है बल्कि आवश्यक यह है कि बच्चे सीखें। विद्यालय की गुणवत्ता और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का असर न केवल बच्चों के निष्पादन एवं उपलब्धि स्तर पर पड़ता है वरन् उनके नामांकन एवं ठहराव पर भी पड़ता है।

एक बड़े तबके का स्कूली शिक्षा से वंचित रह जाना इस बात को दिखाता है कि मुख्य धारा की शिक्षा या औपचारिक शिक्षा में जरूर ऐसी कमियां हैं जिनकी वजह से विद्यालय से बाहर रहने वाले छात्रों की संख्या अधिक हैं। सक्सेना साधना (1997), ने अपने औपचारिक व अनौपचारिक कार्यक्रम के तुलनात्मक अध्ययन में बताया है कि औपचारिक व्यवस्था स्कूल जाने की उम्र के हर बच्चे को शिक्षा देने में कामयाब नहीं है और ऐसे बच्चे जिनका स्कूल में या तो नामांकन ही नहीं है या बीच में स्कूल छोड़ चुके हैं, उनकी संख्या विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। इसके अतिरिक्त पहली और दूसरी कक्षा में नामांकन की संख्या भी बढ़ा-चढ़ा कर बतायी गई है क्योंकि एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार शिक्षकों द्वारा नामांकन संख्या बढ़ाने का दबाव ही उनसे ऐसा करवाता है।

आज शिक्षा समाज के विकास की महत्वपूर्ण कड़ी है। शिक्षा एक ओर जहाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास कर समाज तथा राष्ट्र के लिए श्रेष्ठ नागरिक एवं युवा शक्ति तैयार करती है, वहीं दूसरी ओर यह मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायक होती है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि शिक्षा एक ऐसा प्रकाश स्तंभ है जो व्यक्ति को अंधकार से मुक्त कर उसका सर्वांगीण विकास करता है।

देश में महिला शिक्षा की स्थिति चिंता जनक है। समाज का संपूर्ण विकास, बच्चों के चरित्र निर्माण, बढ़ती हुई जनसंख्या की रोक आदि के लिए महिलाओं की समुचित शिक्षा अत्यधिक आवश्यक है। महिलाएँ समाज व समुदाय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

बालिका शिक्षा

संविधान में 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक-बालिकाओं के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने की बात कही गयी है। शिक्षा की यह अनिवार्यता सबके लिए है चाहे वह किसी भी रंग, रूप, जाति, स्थान, धर्म अथवा लिंग का हो। समाज में व्याप्त छुआछूत, ऊँच-नीच का भेदभाव, धार्मिक भेदभाव, जातिगत संकीर्णता आदि विकास के मार्ग में बाधा है। इन कुरीतियों को मिटाने के लिए महिलाओं को शिक्षित करना होगा। बालिकाओं को प्राथमिक स्तर तक शिक्षित करने के लिए सरकार द्वारा अनेक प्रयास किये जा रहे हैं किंतु इतने प्रयासों के बावजूद भी बालिकाओं की उपस्थिति एवं अवरोधन की समस्या निरंतर बनी हुई है। सरकारी प्रयासों के दौरान यह अवश्य हुआ है कि इनके प्राथमिक स्तर पर पाये जाने वाले उपस्थिति एवं अवरोधन के प्रतिशत में कमी आई है किंतु इस स्थिति के साथ प्राथमिक स्तर तक सभी को शिक्षित करने के लक्ष्य को पूरा नहीं किया जा सकता।

अपव्यय एवं अवरोधन

मध्यप्रदेश सरकार द्वारा प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत बालिकाओं को नि:शुल्क गणवेश, पाठयपुस्तकें उपलब्ध कराना तथा छात्रावास की सुविधा उपलब्ध कराये जाने के बावजूद भी मध्य प्रदेश में प्राथमिक स्तर पर 88 प्रतिशत नामांकन का ही लक्ष्य प्राप्त किया जा सका है। क्योंकि ये बालिकाएं प्रथम तो विद्यालय जाती ही नहीं और यदि प्रवेश

लेती हैं तो पांचवी तक पहुंचने के पूर्व ही पाठशाला छोड़ देती हैं, जिसे अपव्यय एवं अवरोधन कहा जाता है।

प्राथमिक शिक्षा के लिए यह समस्या कोई नवीन समस्या नहीं है। हर्टाग समिति (1929) ने सन् 1922-23 के आंकड़े एकत्रित करके यह निष्कर्ष निकाला कि 100 छात्रों में से केवल 18 छात्र ही प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर पाते हैं, शेष बीच में ही छोड़ देते हैं। इसी प्रकार 1959 में राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट के अनुसार 100 में से 66 बालक बीच में ही अध्ययन छोड़ देते हैं। इस प्रकार देश में एक विशाल मानव श्रम का विकास अवरुद्ध होता है। जब कोई विद्यार्थी किसी शिक्षा संस्थान में प्रवेश लेता है तो उससे दो बातों की उम्मीद की जाती है। प्रथम-वह अपनी शिक्षा को पूर्ण करने के पश्चात् ही संस्था को छोड़ेगा। ऐसी आशा इसलिए की जाती है क्योंकि यदि वह बीच में शाला छोड़ देगा तो धन, शक्ति एंव समय का अपव्यय होगा। द्वितीय- वह प्रतिवर्ष परीक्षा में उत्तीर्ण होगा अन्यथा अवरोध उत्पन्न होगा।

उपरोक्त दोनों स्थिति में शिक्षा के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा अपव्यय और अवरोधन है जो वर्तमान में भी एक गंभीर समस्या बनी हुई । अनेक विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूर्ण करने से पहले ही संस्था छोड़ देते हैं और इसी तरह अनेक विद्यार्थी लगातार परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं। इन दोनों स्थितियों का परिणाम अपव्यय एवं अवरोधन होता है। कोठारी कमीशन के अनुसार ''हमारी शिक्षा व्यवस्था में अपव्यय एवं अवरोधन की मात्रा अत्यंत विशाल है।''

अपव्यय अर्थात उपस्थिति संबंधी समस्या

अपव्यय शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1929 में हर्टाग समिति ने किया था । इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए समिति ने लिखा था कि अपव्यय से हमारा अभिप्राय है-प्राथमिक शिक्षा का पाठयक्रम पूर्ण होने से पहले बच्चों को विद्यालय की किसी कक्षा से हट लेना। इसे स्पष्ट करते हुए समिति ने अपने विचार प्रगट किये कि छात्र जो प्राथमिक शिक्षा के पाठयक्रम को पूर्ण नहीं करते हैं, वे साक्षर नहीं हो पाते हैं जिससे जन, शक्ति एवं समय का अपव्यय होता है।

अवरोधन अर्थात अनुत्तीर्ण संबंधी समस्या

प्राथमिक शिक्षा में होने वाले अवरोधन का उल्लेख भी सर्वप्रथम हर्टाग समिति ने किया

और इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा, अवरोधन से हमारा अभिप्राय है- किसी बच्चे का किसी निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक समय तक रूक जाना या परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर उसी कक्षा में रहना। जब विद्यार्थी किसी कारणवश परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं और कक्षा में एक से अधिक वर्ष व्यतीत करते हैं तो ऐसे छात्रों की शिक्षा में अस्थिरता, गतिहीनता या अवरोधन उत्पन्न हो जाता है।

अपव्यय (उपस्थिति) एवं अवरोधन (अनुत्तीर्ण) दोनों के ही कारण विद्यार्थियों की संख्या में निरंतर ह्रास होता चला जाता है। इन दोनों में अपव्यय अधिक शक्तिशाली कारण है। हर्टाग समिति के अनुसार - ''हमें अपनी खोजों से ज्ञात हुआ कि अपव्यय अधिक शक्तिशाली कारण है।''

शिक्षा मंत्री प्रोफेसर नुरूल हसन ने भी अपव्यय एवं अवरोधन के भयावह परिणामों को अपने शब्दों में अंकित किया है। पिछले वर्षों में 100 बच्चों में से 80 ने कक्षा एक में प्रवेश लिया। 11 वर्ष के होने पर उनमें से 40 ने पढ़ना छोड़ दिया, शेष 40 में से केवल 25 ने 14 वर्ष की आयु तक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की। 17 की आयु में उनकी संख्या घटकर 10 और 21 वर्ष की आयु में यह संख्या 2 रह गई। इस प्रकार 100 बच्चों में से केवल 2 विद्यार्थियों ने ही 21 वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण की।

प्राथमिक शिक्षा

शिक्षा का प्रथम सोपान प्राथमिक शिक्षा से प्रारंभ होता है। यही शिक्षा मानव को चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी सुखद जीवन व्यतीत करने योग्य बनाती है। अत: शिक्षा ही मानव के विकास का एक मात्र साधन है जिसके द्वारा ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है तथा निरंतर परिवर्तनशील समाज में रहने योग्य सभ्य, सुसंस्कृत नागरिक बनाने का प्रयास किया जाता है।

आज के वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के वातावरण में केवल एक शिक्षित समाज ही भविष्य का सपना रह गया है, जो जीवनपर्यन्त शिक्षा के प्रति वचनबद्ध है। जिसमें प्रत्येक नागरिक शिक्षा के दीपक को जीवन भर प्रज्वलित रखने की स्थिति में होता है, क्योंकि पूर्ण रूप से शिक्षित समाज ही गतिशील समाज होता है जो भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार होता है। यह तभी संभव है जब प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता पर बल दिया जाए, जिससे प्रत्येक बच्चे को सीखने

का अनिवार्य स्तर हासिल हो सके। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए विभिन्न शासकीय योजनाओं को लागू कर प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण का प्रयास किया जा रहा है।

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की आधारशीला है। शिक्षा बालक/बालिकाओं को देश के प्रति कर्तव्यबोध कराती है क्योंकि शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उसकी आधारशीला जो देश के बालक/बालिकाएं हैं, उन्हें शैक्षिक दृष्टि से सुदृढ़ व शक्तिशाली बनाना आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है कि उस दिशा की ओर अग्रसर करने वाली उपयुक्त शिक्षा उवं उपयुक्त साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया जाए।

म.प्र. सरकार द्वारा अनेक सुविधाएं उपलब्ध कराने के बावजूद भी बालिकाओं में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या बराबर बनी हुई है। सन् 1991 में यह 42 प्रतिशत थी, 1997 में यह 38.95 प्रतिशत हुई और 2003 में यह 33.68 प्रतिशत बनी हुई है।

प्रतिवर्ष प्राथमिक शालाओं की कक्षा एक से पांचवी में अनेक विद्यार्थी अपना अध्ययन बीच में छोड़ देते हैं,या बहुत से विद्यार्थी एक ही कक्षा में कई वर्ष अनुत्तीर्ण हेाते रहते हैं। इनके अनुत्तीर्ण होने से शासकीय धन, श्रम एवं शक्ति का ह्रास होता है,साथ ही विद्यार्थी अशिक्षित रह जाते हैं। इस तरह के अपव्यय एवं अवरोधन के क्या कारण हैं? यह जानने का प्रयास एक परियोजना के अध्ययन से किया गया है कि बालिकाओं में उपस्थिति एवं अवरोधन के मुख्य क्या कारण हैं और साथ ही साथ उन कारणों को कैसे दूर किया जा सकता है। उनके क्या उपाय हैं जिससे कि श्रम, धन एवं शक्ति के अपव्यय को रोका जा सके तथा बालिकाएं शिक्षित हों और अपना विकास स्वयं कर सकें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से देश के शासन द्वारा निरंतर प्रयास के बावजूद शिक्षा का उचित लाभ नहीं मिल सका है। स्कूल की दर्ज संख्या में बालक/बालिका के अनुपात में काफी असुंतलन है तथा बच्चों द्वारा स्कूल छोड़ देना एक बहुत बड़ी समस्या बनती जा रही है। जब तक हमारा शिक्षा बोध विकसित राष्ट्रों की तरह शिक्षा पर केंद्रित नहीं हो जाता तब तक हम विकसित राष्ट्रों की तरह उद्योगमय धनी एवं उन्नतिशील नहीं बन सकेंगे। इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा शहरी एवं ग्रामीण अंचलों की बालिकाओं द्वारा प्राथमिक शिक्षा स्तर से आगे नहीं बढ़ना या शिक्षा के दौरान उपस्थिति एवं अवरोधन जैसे समस्या का शिकार होना है जो वर्तमान समय का सबसे चिंतनीय विषय बन गया

है। विषय की गंभीरता को समझ कर उसके निदानात्मक पहलुओं को ज्ञात करने के उद्देश्य से इस विषय का गहन अध्ययन किया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात् केंद्र सरकार द्वारा संचालित अनेक प्रमुख शिक्षा योजनाओं के फलस्वरूप संपूर्ण देश में प्राथमिक स्तर पर नामांकन, प्राथमिक स्कूलों एवं अध्यापकों की संख्या जैसी शैक्षणिक सुविधाओं एवं शिक्षा के प्रसार में निम्नांकित वृद्धि हुई।

तालिका 1

भारत में विगत पांच दशकों में प्राथमिक शिक्षा का प्रसार

शैक्षणिक स्थिति	वर्ष 1950-1951	वर्ष 1999-2000	विशेष
एकल नामांकन कक्षा 1 से 5	19.16	113.61 मिली.	6 गुना
नामांकन अनुपात कक्षा 1 से 5	42.6	94.9 मिली.	—
प्राथमिक स्कूलों की संख्या	2,20,000	6,42,000	3 गुना से अधिक वृद्धि
अध्यापकों की संख्या कक्षा 1 से 5	5,24,000	3.2 मिली.	5 गुना से अधिक वृद्धि
अध्यापक छात्र अनुपात कक्षा 1 से 5	1:24	1:43	—

स्रोत : 10वीं पंचवर्षीय योजना (2002-07, योजना आयोग, भारत सरकार (पृ. 24-25)

10वीं पंचवर्षीय योजना के नामांकन अनुपात के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि वर्ष 1997-98 के प्राथमिक स्तर पर छात्रों का शुद्ध नामांकन अनुपात 78 प्रतिशत था। यद्यपि शैक्षिक रूप से पिछड़े राज्यों और उनमें भी पिछड़े जिलों में यह अनुपात राष्ट्रीय अनुपात से निम्न है। अर्थात प्राथमिक शिक्षा सार्वभौमिकरण अथवा अवरोधन को दूर करने हेतु अपने वांछित लक्ष्य से बहुत दूर है।

इसी संदर्भ में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं के शैक्षिक अवरोधन की यह स्थिति मध्य प्रदेश के संदर्भ में और अधिक निम्नतर है।

यहाँ अपव्यय एवं अवरोधन के आधार पर जबलपुर संभाग के प्राथमिक कक्षाओं से संबंधित तालिका प्रस्तुत है :

तालिका 2

जबलपुर जिले के शहरी क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की स्थिति

कक्षा	दर्ज संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	शाला त्यागी	अपव्यय
पहली	215	194	13	8	6.05
दूसरी	196	170	20	6	10.20
तीसरी	168	144	18	6	10.71
चौथी	160	140	28	16	8.13
पाँचवीं	174	130	28	16	16.09
योग	913	778	92	43	51.8

स्रोत : परियोजना प्रतिवेदन – जबलपुर संभाग के विशेष संदर्भ, 2007

तालिका 3

जबलपुर जिले के ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की स्थिति

कक्षा	दर्ज संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	शाला त्यागी	अपव्यय
पहली	193	142	38	13	19.69
दूसरी	155	129	20	6	12.90
तीसरी	140	114	17	9	12.14
चौथी	124	98	20	6	16.13
पाँचवीं	89	65	20	4	22.47
योग	701	548	115	38	88.33

स्रोत: परियोजना प्रतिवेदन – जबलपुर संभाग के विशेष संदर्भ, 2007 पृ. 28–29

उपरोक्त शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं के संयुक्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि शहर की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं में शिक्षा की सार्वभौमिकता का प्रतिशत बहुत कम है अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों में ठहराव न होने की स्थिति चिन्ताजनक है।

अपव्यय एवं अवरोधन के कारण

आर्थिक कारक : आर्थिक रूप से कमजोर अधिकतर माता अपने बच्चों से मजदूरी करवाती हैं क्योंकि उनके सामने भोजन की समस्या सबसे प्रमुख होती है। इस कारण छोटी-छोटी बालिकाओं को भी काम पर लगा दिया जाता है, जिसे बालिकाएं शाला नहीं जा पाती हैं। कुछ बालिकाएं घर पर छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती हैं और उनके माता-पिता मजदूरी करने जाते हैं। अधिकतर परिवार में बच्चों को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता है। आर्थिक समस्याएं बच्चों में पढ़ाई के प्रति रूचि को कम कर देती हैं।

सामाजिक कारक : समाज व्यक्ति पर सर्वाधिक प्रभाव डालता है। समाज के अनुरूप ही व्यक्ति का विकास होता है। इन जातियों के द्वारा शराब जैसी नशीले द्रव का सेवन कर घर व क्षेत्र में आतंक फैलाना, कहीं-कहीं शिक्षक-पालक संघ की स्थापना न होना इत्यादि उल्लेखनीय कारण हैं। शिक्षक का आदिवासियों के जीवन, संस्कृति, रीति-रिवाज, समस्याओं आदि से अपरिचित होना भी एक कारण हैं।

शैक्षिक कारक : प्रत्यक्ष रूप से यह कारण दिखाई नहीं पड़ता है किंतु सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह एक महत्वपूर्ण कारण के रूप में नजर आता है। जिस प्रकार जन ही धन की वृद्धि करता है, उसी प्रकार शिक्षित व्यक्ति ही शिक्षा के प्रति अधिक सचेत होता है। परिणाम स्वरूप वे अपने परिवारों में बालकों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देते हैं। इसके विपरीत अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग स्वयं पढ़े लिखे नहीं होते तो वे अपने बच्चों की पढ़ाई लिखाई पर भी ध्यान नहीं देते हैं। पालकों एवं बालकों की दृष्टि से शिक्षा, उपयोगी न होना, आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण पर्याप्त नहीं मिल पाना, शिक्षकों का बालकों एवं पालकों की बोली की जानकारी न होने से उनका भावनात्मक तादात्मय स्थापित नहीं हो पाता है।

अन्य कारक : प्रत्येक गांव में प्राथमिक विद्यालय नहीं हैं, बालकों को एक गांव से

दूसरे गांव के विद्यालय जाने में असुविधा और कठिनाई होती है। प्राथमिक विद्यालयों में उपयुक्त शिक्षण सामग्री और पर्याप्त स्थान का अभाव रहता है। शिक्षकों के अभाव के कारण कुछ विद्यालय नियमित रूप से नहीं चलते और आये दिन जब-तब बंद हो जाते हैं। शिक्षण पद्धति प्राचीन और अमनोवैज्ञानिक है। अत: न तो वह बालकों को आकर्षित करती है और न वे उससे लाभान्वित होते हैं।

सुझाव एवं सिफारिशें

प्राथमिक शिक्षा का उन्नति करने के लिए तथा अपव्यय एवं अवरोधन के कारणों को दूर करने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए गए है:

1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि की अपेक्षा गुणात्मक उन्नति पर बल दिया जाना चाहिए।
2. पाठयक्रम को उदार, व्यवहारिक और वातावरण एवं परिस्थिति के अनुकूल बनाया जाना चाहिए।
3. विद्यालयों में शिक्षा की अवधि कम से कम 4 वर्ष की होनी चाहिए और उनके शिक्षण स्तर का उन्नयन किया जाना चाहिए।
4. विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों में स्वच्छता, स्वास्थ्य सहकारिता, आत्मविश्वास आदि गुणों का विकास किया जाना चाहिए।
5. शिक्षकों के शिक्षण स्तर का उन्नयन करने के लिए उनके प्रशिक्षण काल में वृद्धि की जानी चाहिए।
6. विद्यालयों को मनोरंजन, ग्राम सुधार, वयस्क शिक्षा और साधारण चिकित्सा का केंद्र बनाये जाने चाहिए।
7. प्रशिक्षण विद्यालय में सुधार किया जाना चाहिए और उनमें ''अभिनव पाठयक्रम''की योजना आरंभ की जानी चाहिए।
8. शिक्षकों के कार्य करने की दशाओं में सुधार करके योग्य व्यक्तियों को शिक्षण कार्य के प्रति आकृष्ट किया जाना चाहिए।

9. विद्यालयों के शिक्षण का समय, छुटिटयाँ आदि स्थानीय ऋतुओं और आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए।

प्रत्येक को बेहतर स्कूली व्यवस्था उपलब्ध हो, जो शिक्षा से वंचित हैं उन्हें शिक्षित बनाने की जिम्मेदारी को गंभीरता से लिया जाए। शिक्षा शास्त्रीय प्रक्रिया में भी सुधार हो जिनसे तमाम 'अवरोध और अपव्यय' जैसी समस्याएं न उभरें। गुणवत्तायुक्त प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु आवश्यक है कि सभी बालिकाएं स्कूल आयें तथा स्कूल में ऐसा वातावरण पनपे कि प्रत्येक बालिका अपनी पूर्ण क्षमता के साथ सीखने हेतु प्रेरित हो। गुणवत्तायुक्त शिक्षा की प्रमुख आवश्यकता सूचक में स्कूल भवन, अध्यापक, आधारभूत संसाधनों की पूर्ति, पाठयक्रम एवं अध्यापन हैं, जबकि प्राप्ति सूचक में बच्चों का ज्ञान, दक्षता, दृष्टिकोण की सीख एवं उपलब्धि सुनिश्चित होनी चाहिए। शिक्षा जितनी ही सशक्त होगी विकास मार्ग उतना ही प्रशस्त होगा। शिक्षा अतीत में तो गौरवान्वित रही लेकिन इसका वर्तमान निर्बल होता जा रहा है। अत: शिक्षा पद्धति एवं शैक्षणिक योजनाओं के क्रियान्वयन पर पुन: विचार करना होगा।

संदर्भ

गर्वमेंट ऑफ इंडिया(2002-2007) *'टेन्थ फाइव ईयर प्लान'*, प्लानिंग कमीशन, नई दिल्ली।

मेहता अरूण सी, *'एजुकेशनल डेवलपमेंट इन इंडिया विथ ए फोक्स ऑन एलिमेन्ट्री एजुकेशन,'* नई दिल्ली।

कृष्ण कुमार, *शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व,* ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली।

गोविंद आर, वर्गीस एन, बी. *क्वालिटी ऑफ प्राईमरी एजुकेशन इन इंडिया, ए केस स्टडी ऑफ एम.पी.,* नई दिल्ली।

डी.पी.ई.पी. गाईड लाईन्स, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।

राव पी.वी. नरसिंहा, मानव संसाधन विकास और पंचायती राज संस्थाएं योजना विशेषांक।,

सिन्हा अमरजीत *'प्राईमरी स्कूलिंग इन इंडिया,* विकास, नई दिल्ली।

वार्षिक प्रतिवेदन, *माध्यमिक शिक्षा,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकीर।

चौबे सरयू प्रसाद, *नई शिक्षा नीति का आधार एवं क्रियान्वयन।*

गुप्त रामबाबू, *भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं,* रतन प्रकाशन मंदिर।

गौड डी.एन. एवं आर.पी.शर्मा, *प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था।*

जायसवाल डॉ. सीताराम, *शिक्षादर्शन एवं भारतीय शिक्षा की समस्याएं,* लखनऊ (म.प्र.)

पाण्डेय रामशकल एवं करूणाकर मिश्रा, *भारतीय शिक्षा की ज्वलंत समस्याएं,* इलाहाबाद 1990।

उमाशंकर दुबे एवं डॉ. श्रीमती कुमुद दुबे, *परियोजना प्रतिवेदन,* शासकीय योजनाओं का बालिकाओं की उपस्थिति एवं अवरोधन के प्रभाव का अध्ययन।

रूहेला प्रो. सत्यपाल: *शिक्षा के सामाजिक आधार,* माया प्रकाशन, जयपुर।

वशिष्ठ एवं शर्मा: *भारतीय शिक्षा की नई दिशा,* लायक बुक डिपो, मेरठ।

वार्षिक, प्रशासकीय प्रतिवेदन: मध्यप्रदेश शासन स्कूल शिक्षा विभाग,1999–2000,2001–2002

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के शैक्षिक अपव्यय संबंधी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन

प्रेमशंकर राम* और सुरेन्द्र राम**

समाज में एक ऐसा वर्ग भी है जो इस रंगीन दुनिया को अपनी आंखों से देख नहीं सकता है, परंतु शिक्षा रूपी नेत्र से वह इस दुनिया को देखने में सक्षम हो सकता है। शरीर के किसी अंग विशेष या अंगों के लोप के कारण सम्पूर्ण शरीर को अक्षम मान लेना उचित नहीं है। आज ऐसा महसूस किया जाने लगा है कि यदि इन बच्चों की शेष बची हुई क्षमता को यथासमय पहचान कर उसे उचित रूप से शिक्षित एवं प्रशिक्षित कर दिया जाए तो ऐसे बच्चे भी अपनी शेष क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज की मुख्य धारा में शामिल हो सकते हैं तथा सामान्य जनों की भांति जीवन-यापन कर सकते हैं।

प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के उद्देश्य से राज्य एवं केंद्र सरकार के साथ ही साथ अतंर्राष्ट्रीय एजेंसियों के सहयोग से विभिन्न प्रकार की योजनाओं एवं परियोजनाओं का शुभारंभ किया गया। इन सभी प्रयासों के माध्यम से नामांकन के क्षेत्र में 90 प्रतिशत से अधिक सफलता प्राप्त होने के बावजूद भी सर्व शिक्षा अभियान का लक्ष्य अधूरा ही रह गया, जिसका मुख्य कारण यह है कि प्राथमिक विद्यालयों में नामांकित अधिकांश बच्चे प्राथमिक शिक्षा को पूरा करने से पूर्व विद्यालय छोड़ देते हैं, जिससे इन बच्चों को शिक्षित करने का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता है। इन बच्चों पर खर्च किया गया धन, समय एवं श्रम का अपव्यय होता है।

---

* रीडर, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रवक्ता, शिक्षक-प्रशिक्षण विभाग, श्री दुर्गाजी पी.जी. कालेज चण्डेश्वर, आजमगढ़

अध्ययन से संबंधित वर्तमान ज्ञान

प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक अपव्यय का विचार सर्वप्रथम हर्टांग समिति (1929) के अध्यक्ष सर फिलिप हर्टांग महोदय ने दिया, उन्होंने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में विभिन्न विषमताओं एवं दोषों को प्रकाश में लाया, जिसमें प्राथमिक शिक्षा में शैक्षिक अपव्यय प्रमुख थी। इस सबंध में उन्होंने पाया कि कक्षा-1 में प्रवेश लेने वाले बच्चों में से कक्षा-5 में पहुंचने से पूर्व ही अधिकाशं बच्चे विद्यालय का परित्याग कर देते हैं, जिससे प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता, गुप्ता (2005)। इसके बाद सामान्य बालकों के शैक्षिक अपव्यय संबंधी समस्या पर अनेक अध्ययन सम्पादित किये गये, जिसमें प्रमुख रूप से अद्यतन अध्ययनों में तिवारी (1964), अग्रवाल (1972), काशीनाथ(1980), पाण्डेय(1991), व्यास व अन्य (1992, त्रिपाठी (1996), सक्सेना(2000), कुण्डू(2000) आदि शामिल हैं।

ज्ञान की रिक्तता

प्रस्तुत समस्या से संबंधित साहित्य के गहन अध्ययन से पता चलता है कि इस क्षेत्र में किये गये अधिकांश अध्ययन सामान्य बालकों के शैक्षिक अपव्यय से संबंधित हैं। परंतु दृष्टिहीन बच्चों से संबंधित शैक्षिक अपव्यय का अध्ययन एक विशेष समूह के रूप में नहीं किया गया है, जो हमें क्षेत्र में ज्ञान की रिक्तता का आभास करता है।

अध्ययन की प्रासंगिकता

अब्दूल कलाम (2005) के शब्दों में ''राष्ट्र की समृद्धि एवं विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण तत्व है। भारत 2020 तक विकसित राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है। फिर भी हमारे पास 350 करोड़ लोग अशिक्षित हैं, जिन्हें साक्षरता की महती आवश्यकता है तथा आधुनिक भारत एवं विश्व के निर्माण के लिए अधिकाधिक लोगों में रोजगारपरक कौशलों के विकास की आवश्यकता है।'' व्यास (1992) के अनुसार कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाले 100 विकलांग बच्चों में से मात्र 63 बच्चे ही कक्षा 5 तक की प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण कर पाते हैं, जबकि 37 बच्चे बीच में ही विद्यालय का परित्याग कर देते हैं। ऐसे बच्चे बड़ी मुश्किल से विद्यालय तक पहुंच पाते हैं। और इतनी बड़ी संख्या में विद्यालय परित्याग निश्चित रूप से चिंता का विषय है। इसी प्रकार 'द हिंदू (2005)' के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले सामान्य बच्चों का विद्यालय

परित्याग की दर 52 प्रतिशत है अर्थात कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाले 100 बच्चों में से मात्र 48 बच्चे कक्षा 5 तक की प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण कर पाते हैं। जबकि 52 बच्चे प्राथमिक शिक्षा के पूर्ण होने के पूर्व ही विद्यालय का परित्याग कर देते हैं। प्रारंभिक स्तर पर विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं से संबंधित नामांकन की स्थिति निम्न प्रकार है। 2001 की जनगणना के अनुसार विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की साक्षरता मात्र 49 प्रतिशत थी।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने प्राथमिक शिक्षा में सुधार के उद्देश्य से सर्व शिक्षा अभियान नामक महत्वकांक्षी योजना का सूत्रपात किया है, जिसक माध्यम से नामांकन में आशातीत सुधार हुआ है, मंगला(2005)। परंतु प्राथमिक शिक्षा में विद्यालय परित्याग पर प्रभावी नियंत्रण के बिना 2010 तक सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना तथा प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाना अत्यंत दुरूह कार्य है।

विकलांगता की प्रकृति के अनुसार नामांकन (2005)

विकलांगता	वर्ग		
	I-V	VI-VIII	I-VIII
दृष्टिबाधित	13.39	24.78	17.95
बधिर	9.11	12.14	9.95
मूक	13.82	11.71	13.24
चलन बाधित	38.85	38.08	35.12
मानसिक मंद	18.44	6.25	15.12
अन्य	8.39	704	8.02
कुल नामांकन प्रतिशत	0.86	1.01	0.90

स्रोत : न्यूपा (2005)

उपरोक्त के आलोक में उन परिस्थितियों एवं कारणों को पता लगाना आवश्यक हो जाता है, जिसके कारण बच्चे प्राथमिक शिक्षा को बीच में ही छोड़कर अन्य कार्यों में संलिप्त हो जाते हैं और उनको शिक्षित करने का सपना अधूरा ही रह जाता है। इस संदर्भ में आ

रहे व्यवधानों को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई, जिसके कारण शैक्षिक अपव्यय दर की गणना के साथ ही साथ उन परिस्थितियों की पहचान करने की आवश्यकता अनुभव की गयी, जिसके कारण सामान्य तथा दृष्टिहीन बच्चे विद्यालय का परित्याग कर देते हैं। क्योंकि इन बच्चों पर व्यय की गयी धनराशि एवं मानवीय प्रयास के साथ ही साथ समय का भी भारी अपव्यय होता है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं।

- प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के शैक्षिक अपव्यय दर की तुलना करना।
- प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के शैक्षिक अपव्यय संबंधी समस्याओं का पता लगाना।
- संबंधित अध्यापकों के शैक्षिक अपव्यय संबंधी समस्या के संदर्भ में विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- संबंधित अभिभावकों के शैक्षिक अपव्यय संबंधी समस्या के संदर्भ में विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन में प्रयुक्त पदों की व्यवहारिक परिभाषाएं

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त पदों की व्यवहारिक परिभाषाएं अग्रलिखित हैं:

सामान्य बालक

सामान्य बालक से आशय ऐसे बच्चे से है, जो देखने, सुनने, समझने, बोलने आदि में सामान्य कोटि का है तथा सामान्य बच्चों के साथ सामान्य प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करता है।

दृष्टिहीन

दृष्टिहीन से आशय ऐसे बच्चों से है, जो आंशिक या पूर्णरूप से अपनी दृष्टि क्षमता खो चुके हैं तथा सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसे बच्चों के लिए विशिष्ट प्रकार की संस्थाओं की स्थापना की गयी है, जिसे विशेष विद्यालय कहा जाता

है। ऐसे बच्चों की शिक्षा स्पर्शलिपि (ब्रेल) एवं सहायक उपकरणों के माध्यम से, दृष्टिहीन बच्चों के लिए स्थापित विशेष विद्यालयों में दी जाती है।

शैक्षिक अपव्यय दर

शैक्षिक अपव्यय दर से आशय कक्षा एक में प्रवेश लेने के पश्चात निर्धारित अवधि के पूर्व ही विद्यालय का परित्याग करने वाले बच्चों के प्रतिशत से है।

शैक्षिक अपव्यय संबंधी समस्या

प्रस्तुत समस्या में शाला त्यागी बच्चों के सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, प्रशासनिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं को शामिल किया गया है, जिनके कारण ऐसे बच्चों में विद्यालय परित्याग की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

अध्ययन की प्रविधि एवं प्रक्रिया

प्रस्तुत अध्ययन का प्रारूप सर्वेक्षण विधि पर आधारित है, जिसमें समग्र के रूप में आजमगढ़ मण्डल में स्थित सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों से संबंधित विद्यालय, अध्यापक एवं अभिभावकों को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श एवं न्यादर्शन तकनीक

वर्तमान अध्ययन हेतु न्यादर्श के रूप में उद्देश्यपूर्ण न्यादर्शन तकनीक के आधार पर कुल 20 सामान्य तथा 10 दृष्टिहीन बच्चों से संबंधित विद्यालयों का चयन किया गया है तथा यादृच्छिक विधि द्वारा 150 सामान्य तथा दृष्टिहीन विद्यालयों के 75 अध्यापकों का चयन किया गया है। इसी प्रकार 120 सामान्य तथा 60 दृष्टिहीन बच्चों एवं अभिभावकों का चयन किया गया है।

समंक संकलन हेतु प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आवश्यक तथ्यों, आंकड़ों एवं सूचनाओं के संकलन हेतु शोधकर्ता ने शालात्यागी मापनी सारणी, अपव्यय समस्या अभिमतावली (शिक्षक प्रारूप) तथा अपव्यय समस्या अभिमतावली (अभिभावक प्रारूप) का उपयोग समंक संकलन हेतु किया, जिसे शोधकर्ता ने स्वयं निर्मित किया है।

प्रयुक्त सांख्यीकीय विश्लेषण

समंक संकलन से प्राप्त सूचनाओं को अर्थपूर्ण बनाने एवं परिणामों की निस्पत्ति हेतु प्रतिशत, का ई-वर्ग मूल्य, टी-परीक्षण माध्य एवं माध्य विचलन आदि सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया गया है।

परिणाम एवं विवेचन

समस्या से संबंधित आंकड़ों, तथ्यों, सूचनाओं आदि के सांख्यकीय विश्लेषण के आधार पर परिणामों को प्राप्त किया गया। प्रस्तुत शोध समस्या के उद्देश्यों पर आधारित परिकल्पनाओं के संबंध में निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए:

1. शैक्षिक अपव्यय दर: सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों से संबंधित प्राथमिक विद्यालयों के शैक्षिक अभिलेखों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर शैक्षिक अपव्यय दर की गणना की गयी, जिसका विवरण तालिका संख्या-1 में दिया गया है:

तालिका-1

कालावधि	नामांकित		शालात्यागी		अपव्यय दर	
	सामान्य	दृष्टिहीन	सामान्य	दृष्टिहीन	सामान्य	दृष्टिहीन
1996-97 2000-01	820	160	290	35	35.36%	21.87%
1997-98 2001-02	1030	195	480	36	46.60%	18.46%
1998-99 2002-03	1120	165	510	31	45.53%	18.78%
योग	2930	520	1280	102	43.68%	19.61%

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि विभिन्न कालावधियों के अंतर्गत नामांकित सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों में से मात्र 43.68 प्रतिशत तथा 19.61 प्रतिशत बच्चे कक्षा 5 तक पहुंचने से पूर्व ही विद्यालय का परित्याग कर देते हैं। इस प्रकार सामान्य बच्चों का

विद्यालय परित्याग दर दृष्टिहीन बच्चों से काफी अधिक है।

2. सामान्य एवं दृष्टिहीन बालकों के शैक्षिक अपव्यय दर में अंतर की सार्थकता:

प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य एवं दृष्टिहीन बालकों के शैक्षिक अपव्यय दर की सार्थकता को ज्ञात करने के लिए 'टी' मूल्य की गणना की गयी, जिसका विवरण अग्रलिखित है:

तालिका-2

समूह	माध्य मूल्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
सामान्य बालक	41.63	4.76	5.63
दृष्टिहीन बालक	16.84	2.83	

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि सामान्य एवं दृष्टिहीन बालकों के शैक्षिक अपव्यय दर में जो अंतर परिलक्षित होता है, वह संयोगवश न होकर वास्तविक है। अत: इसके आधार पर शून्य परिकल्पना -1 को अस्वीकार किया जाता है तथा यह कहा जा सकता है कि सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के शैक्षिक अपव्यय दर में सार्थक अंतर है। इसकी पुष्टि व्यास एवं अन्य (1992) के अध्ययन से भी होती है।

3. सामान्य एवं दृष्टिहीन बालिकाओं के शैक्षिक अपव्यय दर में अंतर की सार्थकता : प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य एवं दृष्टिहीन बालिकाओं के शैक्षिक अपव्यय दर में अंतर की सार्थकता को ज्ञात करने के लिए 'टी' मूल्य की गणना की गयी, जिसका विवरण निम्नवत है:

तालिका-3

समूह	माध्य मूल्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
सामान्य बालिका	48.07	5.72	4.76*
दृष्टिहीन बालिका	26.31	3.03	

उपरोक्त तालिका के अनुसार परिगणित 'टी' मूल्य दिये गये सारणी मूल्य से कहीं अधिक हैं। इसके आधार पर शून्य परिकल्पना को अस्वीकार किया जाता है तथा यह ज्ञात होता है कि शैक्षिक अपव्यय दर में सामान्य एवं दृष्टिहीन बालिकाओं में सार्थक अंतर है। इसका कारण निश्चित रूप से से दृष्टिहीन बालिकाओं के अभिभावकों का जागरूक होना है।

4. सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के शैक्षिक अपव्यय दर की तुलना : सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के शैक्षिक अपव्यय दर के अंतर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए 'टी' मूल्य की गणना की गयी, जिसका विवरण निम्न तालिका में दिया गया है :

तालिका-4

समूह	माध्य मूल्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
सामान्य	41.60	4.67	5.74*
दृष्टिहीन	19.26	2.92	

उपरोक्त तालिका से प्राप्त'टी' मूल्य का मान सारणी मूल्य से कहीं अधिक है। अत: इसके आधार पर शून्य परिकल्पना 3 को अस्वीकार किया जाता है तथा कहा जा सकता हे कि सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के अभिभावकों में सामान्य बच्चों के अभिभावकों की तुलना में जागरूकता अधिक पायी जाती है, जिसके कारण विकलांग बच्चों में विद्यालय परित्याग की दर कम पायी जाती है।

5. अध्यापकों की दृष्टि में शैक्षिक अपव्यय के कारण

शैक्षिक अपव्यय से संबंधित समस्याओं पर अध्यापकों के विचारों का संकलन अभिमतावली के द्वारा किया गया, जिसका विवरण निम्नलिखित है :

तालिका-5

समूह/पद	सामाजिक	आर्थिक	शैक्षिक	प्रशासनिक	व्यक्तिगत
सामान्य	19.82%	42.75%	8.03%	24.46%	4.94%
दृष्टिहीन	21.50%	41.64%	15.10%	13.60%	8.16%

उपरोक्त तालिका के आधार पर कहा जा सकता है कि शैक्षिक अपव्यय के सामाजिक एवं आर्थिक कारणों के संबंध में अध्यापकों के विचार लगभग समान हैं, जबकि शैक्षिक, प्रशासनिक एवं व्यक्तिगत कारणों के संबंध में अध्यापकों के विचारों में भिन्नता पायी जाती है। अध्यापकों के अनुसार शैक्षिक अपव्यय के सामाजिक एवं आर्थिक कारण, दोनों वर्गों को समान रूप से प्रभावित करते हैं, जबकि दृष्टिहीन बच्चों में व्यक्तिगत समस्याएं अधिक पायी जाती हैं। इसी प्रकार शैक्षिक आवश्यकताओं में भी भिन्नता पायी गयी।

6. अभिभावकों की दृष्टि में शैक्षिक अपव्यय के कारण : अभिभावकों की दृष्टि में सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों की शैक्षिक अपव्यय संबंधी समस्याओं का पता लगाने के लिए इस हेतु निर्मित अभिमतावली से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर निम्नलिखित तालिका का निर्माण किया गया।

तालिका-6

समूह/पद	सामाजिक	आर्थिक	शैक्षिक	प्रशासनिक	व्यक्तिगत
सामान्य	26.05%	40.60%	18.30%	11.03%	4.02%
दृष्टिहीन	23.30%	39.20%	9.60%	10.16%	17.74%

उपरोक्त तालिका के आलोक में कहा जा सकता है कि अभिभावक दोनों वर्गों में शैक्षिक अपव्यय का महत्वपूर्ण कारण सामाजिक जागरूकता एवं आर्थिक विपन्नता को मानते हैं। शैक्षिक अपव्यय के प्रशासनिक कारणों पर भी उनके विचार एक समान हैं। परंतु अभिभावक एवं व्यक्तिगत कारणों पर दोनों वर्गों में असमानता परिलक्षित होती है क्योंकि अभिभावक सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के व्यक्तिगत एवं शैक्षिक आवश्यकता को एकसमान न मानकर पृथक-पृथक महत्व प्रदान करते हैं। उनके अनुसार शैक्षिक समस्याओं के कारण सामान्य बच्चों में अपव्यय की दर अधिक पायी जाती है, जबकि दृष्टिहीन बच्चों में विद्यालय परित्याग का प्रमुख कारण व्यक्तिगत समस्याएं हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन द्वारा शोधकर्ता को निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए:

1. प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों का विभिन्न कालावधियों में शैक्षिक अपव्यय दर क्रमश: 1996-97 से 2000-01 के मध्य 35.36 तथा 21.87 इसी प्रकार 1997-98 से 2001-02 के मध्य 46.60 तथा 18.46 एवं 1998-99 से 2002-03 के मध्य 45.53 तथा 18.78 पायी गयी। समग्र रूप से सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों का अपव्यय दर क्रमश: 43.68 एवं 19.61 था।
2. प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य एवं दृष्टिहीन बालकों के मध्य शैक्षिक अपव्यय दर में सार्थक अंतर पाया गया।
3. प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य एवं दृष्टिहीन बालिकाओं के मध्य शैक्षिक अपव्यय दर में सार्थक अंतर पाया गया।
4. प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य एवं दृष्टिहीन बच्चों के मध्य शैक्षिक अपव्यय में सार्थक अंतर पाया गया।
5. शैक्षिक अपव्यय के कारणों के संदर्भ में सामान्य एवं दृष्टिहीन वर्ग के अध्यापकों के विचारों में सामाजिक एवं आर्थिक मामलों पर सहमति पायी गयी, जबकि शैक्षिक, प्रशासनिक एवं व्यक्तिगत मामलों पर उनके विचारों में विभिन्नता पायी गयी।
6. शैक्षिक अपव्यय के कारणों के संदर्भ में सामान्य एवं दृष्टिहीन वर्ग के अभिभावकों के विचारों में सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक मामालों पर सहमति पायी गयी, जबकि शैक्षिक एवं व्यक्तिगत मामलों पर उनके विचार भिन्न पाये गये।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सामान्य बच्चों का शैक्षिक अपव्यय दर दृष्टिहीन बच्चों के शैक्षिक अपव्यय पद की तुलना में अधिक है। परन्तु मूक-बधिर बच्चों का नामांकन बहुत ही मुश्किल से हो पाता है और इनका विद्यालय परित्याग करना अत्यंत ही दु:खद है। अत: इस पर भी रोक लगाने की आवश्यकता है। अध्यापकों एवं अभिभावकों द्वारा विद्यालय परित्याग के लिए जिन

कारणों को प्रकाशित किया गया है उनमें सामाजिक एवं आर्थिक कारण महत्वपूर्ण हैं, जिस पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करके विद्यालय परित्याग को रोका जा सकता है। इसके लिए समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाने के साथ ही बच्चों के लिए मुफ्त पुस्तकें, यूनिफार्म, स्टेशनरी एवं मुफ्त भोजन आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके साथ ही साथ शैक्षिक वातावरण में भी पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है, जिससे बच्चे विद्यालय की ओर आकर्षित हो सकें। इसके अतिरिक्त समय-समय पर बच्चों के लिए निर्देशन एवं परामर्श के माध्यम से उनकी व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान किया जाना चाहिए। इस प्रकार के उपाय करके हम बच्चों के विद्यालय परित्याग को काफी हद तक कम कर सकते हैं और शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लक्ष्य को प्राप्त करके समय, श्रम एवं धन के अपव्यय को रोक सकते हैं।

सदंर्भ

अग्रवाल,एच.एन. (1972): *'बेस्टेज एण्ड स्टेगनिशन इन महेन्द्रगढ़'* टी.पी. ब्लाक, सर्वे रिपोर्ट ट्राइबल रीसर्च एण्ड डेवलपमेंट इन्स्टीयूट भोपाल।

काशीनाथ, एच.एम. (1980): *'ए क्रिटीकल सर्वे ऑफ प्राब्लम्स ऑफ वेस्टेज एण्ड स्टेगनेशन इन प्राइमरी एजूकेशन इन कर्नाटका स्टेट, थर्ड सर्वे ऑफ एजूकेशनल रीसर्च* बाई एम. वी. बुच एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

पाण्डेय एस. पी. (1991): *''स्डडी ऑफ द डिसएबल्ड इन रूरल सोसाइटी ऑफ उत्तर प्रदेश विथ स्पेशल रीफरेन्स टू बहराइच, देवरिया एण्ड बलिया''* फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रीसर्च, एन.सी.ई.आर.टी., न्नई दिल्ली।

व्यास, जे.सी.एवं अन्य (1992): *''पीपुल ड्राप आउट्स एट द प्राईमरी स्टेज इन द स्टेट ऑफ राजस्थान''* एस.सी.ई.आर.टी. उदयपुर, राजस्थान।

कूण्डू सी.एल. (2000): *'स्टेट्स ऑफ डिसएविलिटी इन इंडिया'* भारतीय पुनर्वास परिषद, नई दिल्ली।

त्रिपाठी जी.एस. (1996): *'उ.प्र. के सीतापुर जिले में सिंघौली विकास खण्ड के न्याय पंचायत बाड़ी की बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा को अवरोधित करने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन'* एजूकेशनल कनसल्टेन्ट ऑफ इंडिया लिमिटेड द्वारा प्रायोजित शोध अध्ययन, गांधी भवन, लखनऊ।

गुप्ता एस.पी. (2005): *'भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

मेहता ए.सी. (2005):- *एलीमेंन्ट्री एजूकेशन इन इंडिया:* एनालीटिकल रिपोर्ट, न्यूपा, नई दिल्ली।

द हिंदू (2005): *'52 प्रतिशत ड्राप आउट्स रेट ऑन इडियाज प्राइमरी एण्ड एलीमेंटरी स्कूल'* 21 फरवरी, 2005।

कलाम ए.पी.जे. (2005): फार डिग्नीटी एंड ह्यूमन लाइफ, योजना, नई दिल्ली, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।

प्रसाद, मंगला (2005): *'सर्व शिक्षा अभियान' शेयर एंड केयर,* वर्ष-6, अंक -2, (अगस्त-अक्टूबर) विकलांग समाकलन संस्थान, करौंदी, वाराणसी।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

चिंतक और चिंतन

वर्तमान भाषिक संदर्भ में जैक्स देरिदा के चिन्तन की अनुप्रयोगात्मक उपादेयता

देवेन्द्र सिंह*

सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

शिक्षा को जीवन की प्रयोगशाला कहा गया है, क्योंकि सबका विकास मनुष्य करता है और मनुष्य का विकास शिक्षा करती है। सही अर्थों में शिक्षा से अभिप्राय मानव निर्माण व चरित्र निर्माण से है। लेकिन भारतीय शिक्षा प्रणाली में सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है, क्योंकि शिक्षा से मानवीय मूल्यों का सम्बन्ध विच्छेद-सा हो गया है जिससे शैक्षिक प्रणाली में अप्रत्याशित रूप से प्रतिमान परिवर्तन हो रहा है। वर्तमान भौतिक उत्पादन सम्बन्धों और शक्तियों पर आश्रित वैश्विक सामाजिक व्यवस्था और उसके नियामक ईकाइयों की आधारभूत संरचना जिन मूलभूत अभिकरणों से समन्वित है, उसमें शैक्षिक प्रणाली का योगदान महत्वपूर्ण है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में पश्चिमी विचार जगत में जो नवीन प्रस्थापनाएं विभिन्न दार्शनिक स्तरों पर प्रस्तुत की जा रही हैं उसमें यह चिन्तन का प्रमुख बिन्दु बन चुका है कि मानसिक जगत की परिकल्पनायें और उसकी युक्तियुक्त संगत आधार भौतिक वस्तुओं पर आधारित है या भौतिक जगत की अवधारणायें मानसिक जगत का प्रतिबिम्ब मात्र हैं।

शैक्षिक संदर्भ में रूपान्तरण की प्रक्रिया गतिशील है। सम्पूर्ण शैक्षिक संरचना के संदर्भ में सैद्धान्तिक पक्षों का निश्चयन बहुत सरल कार्य नहीं है। इसके सिद्धान्त रूप में प्रतिपादन करने में विभिन्न उप पक्षों का वास्तविक परिस्थितियों में मूल्यांकन करना

*रीडर, शिक्षा विभाग, सतीश चन्द महाविद्यालय, बलिया, उ.प्र.

आवश्यक है जो और भी दुरुह कार्य है। चिन्तक पृथ्वी के किसी दूरस्थ कोने में भी रहकर ऐसा चिन्तन कर सकता है जिनकी अनुप्रयोगात्मक उपादेयता सार्वभौमिक रूप से अन्यत्र भी हो सकती है। यहाँ अनुप्रयोगात्मक उपादेयता से तात्पर्य शैक्षिक विचारों की भारतीय शैक्षिक समस्याओं के समाधान में प्रतीत होने वाले सामर्थ्य से है। पश्चिमी विचार जगत में जैक्स देरिदा जैसे चिन्तक ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में जिन वाह्य अनुभवों को शब्द संरचना और उसके अर्थ में बाँधने का प्रयास करते हैं उससे यह स्थापित होता है कि भाषा, अभिव्यक्ति और इसमें निवेशित तथा उनसे संरचित होने वाली अर्थपूर्ण समझ ही ज्ञान की प्राथमिक इकाई है। वस्तुतः समग्र को समझने और निगमन एवं आगमन तर्कों की युक्तिसंगतता को प्रस्थापित करने के लिए मानव समुदाय ने अपने ऐतिहासिक विकास क्रम में ज्ञान को संस्थागत विशेषताओं की उपलब्धियों के रूप में स्थापित कर रखा है। (सिंह, 1992)

प्रस्तुत शोधपरक लेख में शोधकर्ता द्वारा फ्रांसिसी चिन्तक एवं दार्शनिक जैक्स देरिदा के चिन्तन के आलोक में भाषा विज्ञान के दर्शन की अनुप्रयोगात्मक उपादेयता को विश्लेषित किया गया है।

जैक्स देरिदा के विचार

जैक्स देरिदा का जन्म अल्जीरिया में 15 जुलाई 1930 को हुआ था। उनके विचार उनकी प्रमुख चर्चित कृतियाँ ऑफ ग्रामेटोलाजी, राइटिंग ऐंड डिफरेन्सेज (1967), स्पीच ऐंड फेनामेना (1967), मार्जिन्ज ऑफ फिलासफी, डिस्सेमीनेशन, पोजीशन्स, (1981), जेनेसिस ऐंड स्ट्रक्चर ऐंड फेनामेनालोजी (1978) लेटर टू ए जापानीज फ्रेंड (1985), डीकान्स्ट्रक्शन ऐंड पासिबिलिटी ऑफ जस्टिस (1992), ऐक्ट्स ऑफ रिलीजन (1985), फोर्स ऑफ ला (1992) के अन्तर्गत स्थापित हैं। उपयुक्त पुस्तकों में ऑफ ग्रामेटोलाजी एवं डीकान्स्ट्रक्शन उनके विचारों को अत्यधिक गहनता एवं स्पष्टता के साथ प्रकट करती है। इसके अन्तर्गत भाषा विज्ञान के दर्शन एवं शब्द अर्थ सम्बन्ध पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। (नागराजन, 2006)

जैक्स देरिदा ने अपने जीवन में व्यवधान के कारण बहुत देर से फ्रान्स में स्नातक पूरा किया एवं बाद की शिक्षा हावर्ड एवं पेरिस विश्वविद्यालय से पूरा किया। जैक्स

देरिदा की प्रसिद्ध के कारण उन्हें यूरोप व संयुक्त राज्य में विभिन्न विश्वविद्यालयों में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति हेतु आमंत्रित किया गया जहाँ येल विश्वविद्यालय में पाल डे मैन एवं हिलिस मिलर उनके प्रमुख अनुयायी बने। 1966 में जैक्स देरिदा ने जान हापकिन्स विश्वविद्यालय में सेमिनार में अपना पहला शोध पत्र जिसका शीर्षक ''स्ट्रक्चर, साइन ऐंड प्ले इन दि डिस्कोर्स आफ ह्यूमन साइंसेज'' था, से कदम रखा एवं 8 अक्टूबर 2004 को अग्नाशय के कैंसर से पेरिस के निजी अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गयी। (दि हिन्दू- अक्टूबर 2006)

भाषा-विज्ञान का दर्शन

सामान्य रूप से लोग यही जानते हैं कि शब्द से अर्थ उत्पन्न होता है, किन्तु यह स्थायी भ्रम है। भारतीय मनीषी इस तथ्य से अवगत थे कि शब्द से अर्थ की उत्पत्ति नहीं होती, अपितु शब्द का जन्म अर्थ से होता है। भारतीय परम्परा में 'अर्थ' वस्तु का द्योतक है। वर्तमान भाषिक संदर्भ में जिसे अर्थ कहा जाता है, प्राचीन भारतीय परम्परा में उसके लिए ज्ञान का प्रयोग हुआ है। (ठाकुर-2008) ज्ञान अति व्यापक है। ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। उसका अनेक विज्ञानों, ज्ञानों या विषयों में विभाजन केवल व्यावहारिक है, तात्विक दृष्टि से ज्ञान को विभाजित नहीं किया जा सकता है। ज्ञान की इस अविभाज्यता के कारण ही सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान एक दूसरे से संबंधित हैं। चूंकि भाषा विज्ञान व व्याकरण, दोनों ही भाषा का अध्ययन करते हैं। अत: भाषा विज्ञान का सम्बन्ध इतना अधिक है कि यह कहना कठिन हो जाता है कि अमुक अध्ययन भाषा वैज्ञानिक है या व्याकरणिक। तथापि दोनों में भेद स्पष्ट है। व्याकरण शास्त्र है। उसमें इस बात के निर्देश पर बल रहता है कि अमुक रूप शुद्ध है और इसी का प्रयोग भाषा में होना चाहिए। दूसरी तरफ भाषा विज्ञान, विज्ञान है और उसमें शुद्ध अशुद्ध के विचार पर बल नहीं होता। भाषा विज्ञान, भाषा में जो कुछ भी है, जैसा भी है, उसका अध्ययन विश्लेषण करता है। वह व्याकरण की तरह शुद्ध भाषा के बोलने-लिखने के नियम नहीं देता। (साधुत्व ज्ञान विषया सैषा व्याकरण स्मृति:- वाक्य पदीय।-142) दूसरे, व्याकरण किसी एक भाषा का होता है जबकि भाषा वैज्ञानिक अध्ययन एक का भी हो सकता है और सामान्य रूप से कई भाषाओं का भी। भाषा विज्ञान व्याकरण द्वारा प्रस्तुत सामग्री का उपयोग करता है। वह व्याकरण द्वारा निर्देशित अनेक नियमों के कारण तथा

इतिहास आदि की व्याख्या करता है। इसीलिए भाषा विज्ञान को व्याकरण का भी व्याकरण कहा जा सकता है। (तिवारी, 2008)

भाषा शब्द संस्कृत की भाष् (श्वादिगणि) धातु से बना है। (भाष् धातु का अर्थ है- भाष व्यक्तायां वाचि) व्यक्त वाणी। 'भाष्यते व्यक्त वाग् रूपेण अभिव्यक्यते इति भाषा' अर्थात् व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे भाषा कहते हैं। मुख्य रूप में भाषा शब्द से मानवीय व्यक्त वाणी का ही ग्रहण होता है क्योंकि इस व्यक्त भाषा के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानवीय भावों को प्रकट किया जा सकता है। सारतः भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि- संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है। (द्विवेदी, 2005)

भाषा अभिव्यक्ति का साधन है और साहित्य मानव की सुन्दरतम अभिव्यक्तियों का भण्डार है। साहित्य का आधार भाषा है और भाषा का सुरक्षित रूप साहित्य में ही मिल सकता है। साहित्य के कथ्य और अभिव्यक्ति, दोनों ही पक्षों का अध्ययन भाषा विज्ञान करता है। दूसरी ओर साहित्य भी भाषा विज्ञान से काफी सहायता लेता है। भाषा में परिवर्तन होते-होते अनेक शब्दों या रूपों में इतना ध्वन्यात्मक परिवर्तन हो जाता है कि उन्हें पहचानना काफी कठिन हो जाता है। इसी प्रकार अनेक शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं जिनकी ठीक जानकारी में भाषा विज्ञान सहायक होता है। इस प्रकार प्राचीन साहित्य अपने अर्थ निर्धारण में भाषा विज्ञान से अमूल्य सहायता लेता है। भाषा का प्रयोग सामान्य रूप से अपने व्यापक अर्थ में किया जाता है। इसमें उच्चारण, ग्रहण और बोध सभी का समावेश रहता है। परन्तु गम्भीरता से वैचारिक चिन्तन करने पर भाषा के दो रूप प्रकट होते हैं- स्थायी एवं सूक्ष्म रूप तथा अस्थायी एवं स्थूल रूप। स्थायी एवं सूक्ष्म रूप को भाषा (Language) एवं स्थायी एवं स्थूल रूप को वाक् (Speech) कहते हैं। (द्विवेदी, 2005)

भाषा सूक्ष्म एवं भावात्मक वस्तु है, वाक् स्थूल और भौतिक वस्तु है। भाषा स्थायी है, वाक् अस्थायी है जो कुछ हम बोलते व सुनते हैं, वह वाक् है। श्रवण के द्वारा जो ज्ञान होता है, वह भाषा है। वांगिन्द्रिय द्वारा उच्चरित व श्रवणेन्द्रिय द्वारा गृहीत भाषा का रूप 'वाक्' की कोटि में आता है। भाषा कूटस्थ है, भावात्मक है, सूक्ष्म है और अनिवर्चनीय है। 'वाक्' भाषा के प्रकाशन का माध्यम है। यह स्थूल एवं नश्वर है।

इसका निर्वचन या विश्लेषण हो सकता है। वाक्यपदीय शब्दों में-भाषा को 'स्फोट' और वाक् को 'नाद' कह सकते हैं। भाषा साध्य है, वाक् साधन है। हम शब्दों या वाक्यों को सुनकर जो कुछ सीखते हैं, वह भाषा है, भाषा को सीखकर हम जो बोलते हैं, वह वाक् है। इस प्रकार भाषा के बोध पक्ष को भाषा कहते हैं और उच्चारण व श्रवण पक्ष को वाक्। ज्ञान भाषा है और उसका प्रकाशन वाक् है। भाषा अनुभूति, भाव व विचार के रूप में स्थायी है और वाक् उच्चारण के साथ नष्ट होती रहती है। एक वाक्य को बीस बार बोलने पर 'वाक्' की 20 इकाइयां होंगी परन्तु भाषा की वह एक इकाई मानी जायेगी। 'भाषा' ज्ञान की समष्टि है और वाक् उसकी अभिव्यक्ति। वाक्य व व्याकरण 'भाषा' के अंग हैं परन्तु उच्चारण व ग्रहण 'वाक्' के अवयव हैं।

जैक्स देरिदा एवं भाषिक संदर्भ

आचार्य पाणिनि ने भाषा का सार 'अर्थ' माना है। अतएव 'अर्थवान' या सार्थक शब्दों को ही 'प्रातिपदिक' (मूल संज्ञा शब्द या प्रकृति) माना है। इससे स्पष्ट है कि भाषा की सार्थकता अर्थ से है। अर्थ ही भाषा का सर्वस्व है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में 18 व ओग्डेन एवं रिचार्ड्स ने "Meaning of meaning" में अर्थ के 16 लक्षण दिये हैं। भर्तृहरि ने संक्षेप में अर्थ का सुन्दर लक्षण दिया कि 'शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे ही अर्थ कहते हैं'।

यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्।।

(वाक्यपदीयम् 2-328)

इससे स्पष्ट है कि अर्थ का सामान्य लक्षण 'प्रतीति' है। प्रत्येक व्यक्ति शब्द सुनकर कुछ अर्थ समझता है। उसकी यह व्यक्तिगत अनुभूति 'प्रतीति' ही उसका अर्थ होता है। आधुनिक अर्थ वैज्ञानिक आग्डेन एवं रिचर्ड्स अर्थ के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए शब्द अर्थ व वस्तु के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या सुव्यवस्थित रूप में करते हैं। वे शब्द का प्रतीक या संकेत (Symbol), अर्थ को विचार या सूचना (Thought or Reference) और भौतिक पदार्थ या घटना को प्रतिपाद्य Referent) कहते हैं। प्रतिपादक (शब्द) और प्रतिपाद्य (वस्तु) का सम्बन्ध मस्तिष्क से स्थापित होने पर अर्थ उद्भाषित

होता है। इस प्रकार अर्थ शब्द और वस्तु के सम्बन्ध का सूचक है। वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में उक्ति व उसके अन्तर्गत अभिव्यंजित तथ्य के मध्य अवस्थित सम्बन्ध को अर्थ कहा जाता है। दार्शनिक या भाषा शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि शब्द और अर्थ अन्योन्याश्रित हैं। शब्द शरीर है और अर्थ आत्मा है। दोनों को मिलाकर 'सार्थक शब्द' बनता है। अतएव भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में शब्द और अर्थ को एक तत्व के ही दो अभिन्न अंग माने हैं।

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ।

(वाक्य. 2-31)

उत्तर-आधुनिकता के प्रवर्तक अल्जीरियाई मूल के फ्रांसिसी दार्शनिक चिन्तक जैक्स देरिदा का मानना है कि अर्थ प्रतिपादक और प्रतिपाद्य के सम्बन्ध का द्योतक नहीं है। भाषिक संदर्भ में प्रतिपाद्य (भौतिक पदार्थ) का अस्तित्व नहीं रहता है। यह केवल शब्द केंद्रित भ्रम (Logocentric illusion) है। प्रतिपाद्य का अन्वेषण प्रतिपादक से प्रतिपादक तक की भाषा की भौतिक क्रीड़ा के दमन हेतु हुआ है। वे उसे अलौकिक प्रतिपाद्य (Transcedental Signified) मानते हैं। डेरिडा के अनुसार अनुपस्थित की उपस्थिति के पूरक का कार्य करने वाला संकेत या बिम्ब हमें दिग्भ्रमित करता है। अर्थ केवल शब्द से शब्द की यात्रा है। इसके अन्तर्गत प्रतिपाद्य कभी उपस्थित तक नहीं होता। भाषिक संदर्भ में वस्तु की अनुभूति किसी को नहीं होती। क्योंकि उसकी ज्ञानेन्द्रियों का भौतिक जगत से सीधा सम्बन्ध नहीं होता। अर्थ की अनुभूति के क्रम में प्रतिपाद्य सदैव अनुपस्थित रहता है। (देरिदा, 1976)

जैक्स देरिदा पश्चिमी तत्व मीमांसा के कलात्मक आभामण्डल और पारम्परिक शब्द केन्द्रवाद (Logocentrism) से मुक्ति चाहते हैं। प्रतिपाद्य की अनुपस्थिति के आधार पर वे सिद्ध करना चाहते हैं कि कोई परम तत्व नहीं है, कुछ भी अलौकिक नहीं है। भाषा भी प्राकृतिक तत्व नहीं है। वह भी मनुष्य कृत है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नवोदित उत्तर आधुनिकता का उद्देश्य अतीत के सारे बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करना है। यह मुक्ति मोक्ष का पर्याय नहीं, भौतिक भोगवाद की पराकाष्ठा है। उपभोक्तावादियों के सुविकसित दर्शन का प्रतिनिधित्व करने वाली उत्तर आधुनिकता का उन्मुक्ति आन्दोलन एक प्रकार का जेहाद है जिसमें शब्द और अर्थ को हथियार के रूप में प्रयुक्त किया

गया है। उनका लक्ष्य सारे नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को उखाड़ फेंकना है, किन्तु उनका प्रयत्न अर्थ तत्व के अतिरिक्त निर्धारक के विखण्डन पर केन्द्रित है। जैक्स देरिदा शब्द केन्द्रवाद को मिथ्या सिद्ध करने के लिए अत्याधुनिक अस्त्र विखण्डन (Deconstruction) का प्रयोग करते हैं। विखण्डनवाद की अवधारणा अनिर्धारिता (Indeterminancy) के वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है जो मूलत: भौतिक यथार्थ को जानने का एक उपक्रम है। परमाणुओं के अन्तर्गत आवर्तमान ऋणात्मक इलेक्ट्रान की स्थिति और गति की सांख्यिकीय सम्भावनाओं का निर्धारण मात्र एक बार सम्भव है। उसके बाद अनन्त सम्भावनाओं के मध्य सब कुछ अनिश्चित हो जाता है और उसे जानने के उपक्रम में स्वयं परमाणुओं का प्राकृतिक स्वरूप ही विखण्डित हो जाता है। परमाणुओं का विखण्डन उनमें अन्तर्निहित धनात्मक व ऋणात्मक शक्तियों के टकराने से होता है। देरिदा का विखण्डनवाद इसी वैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है। परमाणुओं के विखण्डन से जिस प्रकार अनगिनत परमाणुओं की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार पाठ के विखण्डन से अमिट अर्थ उत्पन्न होते हैं। (रिचार्ड, 1991)

जैक्स देरिदा ने पाठ को विखण्डित करने के लिए 'विभेद' को एक विशिष्ट तकनीक के रूप में प्रयुक्त किया है जिसमें अन्तर्निहित दो विरोधी शक्तियों के टकराने से अर्थ की अनन्त सम्भावनाएं उत्पन्न होती हैं। विरोधाभास उत्पन्न करने के लिए वे डिफरेन्स (Difference) शब्द का विवरण ही बदलकर उसे 'डिफरेन्स (Deference) कर देते हैं जिससे फ्रांसिसी भाषा की क्रिया 'डिफरेन्स' की तरह उसके दो अर्थ हो जाते हैं : भिन्न और स्थगन। (देरिदा, 1985)

जैक्स देरिदा का मानना है कि भाषा में केवल 'विभेद' है वे 'विभेद' को 'विरोध' का पर्याय मानते हैं। 'विभेद' की संरचना को उद्घाटित करने के लिए वे कहते हैं कि वह न उपस्थित है और न अनुपस्थित। वह न सकारात्मक है न नकारात्मक। विभेद के कारण ही उपस्थिति व अनुपस्थिति का विरोध सम्भव हो पाता है। विभेद न सक्रिय है और न निष्क्रिय। वह निलम्बित अवस्था है। वह वर्तमान की संरचना है क्योंकि वह सदा ही निलम्बित ही रहता है। प्रकाश से भी तीव्र वेग से गतिमान वर्तमान एक अतीन्द्रिय स्थिति है, निलम्बित अवस्था है। भूत व भविष्य के बीच वह त्रिशंकु की तरह लटका हुआ है। जैक्स देरिदा का विभेद भी वर्तमान की तरह त्रिशंकु स्थिति का ही द्योतक है।

अर्थ से सम्बद्ध जैक्स देरिदा की यह अवधारणा इस तर्क पर आश्रित है कि भाषिक संदर्भ में सामान्यत: कुछ भी उपस्थित नहीं है। अर्थ अनुपस्थित वस्तुओं के सम्बन्ध पर अवलम्बित है। देरिदा का निषेधात्मक अर्थ चिन्तन अपोहवाद की छायाप्रति नहीं है। इसमें कुछ ऐसे विचार हैं जिनका अपोहवाद से कोई साम्य नहीं है। वे विभेद को कल्पना और आत्म स्नेह कहते हैं। उनका कहना है कि केवल कल्पना में स्वयं को जन्म देने की शक्ति है, किन्तु वह कुछ सृजन नहीं करती क्योंकि वह कल्पना है, केवल कल्पना। वह स्वयं से भिन्न कुछ ग्रहण नहीं करती और वह यथार्थ से प्रभावित भी नहीं होती। यह शुद्ध आत्म स्नेह है। इससे स्पष्ट है कि जैक्स देरिदा का 'विभेद' कल्पना है। यह कल्पना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। 'विभेद' देरिदा की मौलिक कल्पना है। यह भी कहना कठिन है, क्योंकि ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि के पूर्व की शून्यता का वर्णन हुआ है। वहाँ कहा गया है कि उस समय न असत् था और न सत्, न मृत्यु थी न अमरता। दिन और रात का भी अस्तित्व नहीं था। 'विभेद' भी ऐसी ही निलम्बित अवस्था का सूचक प्रतीत होता है। (ठाकुर, 2008)

आलोचनात्मक समीक्षा

भारतीय दर्शन में उल्लेख है- ''शब्द ब्रह्मणि निष्णात: परमब्रह्माधि गच्छति''। इस प्रकार भाषा व शब्द चिन्तन भारतीय दर्शन का अंग है। इसमें अनेक विचारकों ने चिन्तन किया है। शब्द भाषा विज्ञान का विषय है। भाषा सीखने के संदर्भ में यह सच है कि भाषा शून्य में नहीं सीखी जाती। वह समाज विशेष में रहकर सीखी जाती है। लेकिन वर्तमान भाषिक संदर्भ (शब्द अर्थ सम्बन्ध) में विभिन्न चिन्तकों के चिन्तन पद्धति में भिन्नता है। प्रख्यात अल्जीरियाई मूल के फ्रांसिसी चिन्तक जैक्स देरिदा ने अर्थ तत्व के मूल को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। देरिदा का मानना है कि वस्तु जगत को प्रतिविम्बित करने वाली मानसिक अनुभूति स्वाभाविक रूप से विश्वजनित भाषा का सृजन करती है। मानव मष्तिष्क में भौतिक पदार्थ अथवा घटना के चित्र होते हैं। उनके लिए अलग-अलग भाषा में अलग-अलग शब्द होते हैं। किन्तु मानसिक अनुभूति सार्वत्रिक और सार्वजनीन होती है। देरिदा की यह अवधारणा भी भारतीय चिन्तन से भिन्न प्रतीत नहीं होती। महाभाष्यकार पतंजलि कहते हैं कि शब्द से अर्थ नहीं उत्पन्न होता, अपितु शब्द का जन्म अर्थों से होता है और अर्थ पूर्णत: मानसिक

अनुभूति है। शब्द में अन्तर्निहित भ्रामकता का ज्ञान विश्व के अद्वितीय वैयाकरण महर्षि पाणिनी को था। इसी कारण उन्होंने शब्द की व्याख्या के संदर्भ में कहा था कि शब्द के स्वरूप की अशब्द संज्ञा है। तात्पर्य यह कि वर्णों के सार्थक समूह द्वारा शब्द को रूपायित करना सम्भव नहीं है। इस आधार पर भारतीय संदर्भ में शब्द ब्रह्म को शब्द केन्द्रित भ्रम नहीं कहा जा सकता।

जैक्स देरिदा का मानना है कि प्रतिपादक प्रतिपाद्य का अनुकरण करता है। देरिदा की चर्चित कृति आफ ग्रामोटोलाजी (1976) की भूमिका में गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक कहती हैं कि प्रतिपादक और प्रतिपाद्य की अदला-बदली हो सकती है क्योंकि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। (ऑफ ग्रामेटोलाजी-पृष्ठ 10) शब्द-अर्थ सम्बन्ध परिचर्चा के अन्तर्गत देरिदा व स्पीवाक् दोनों चिन्तक भारतीय संदर्भों का उल्लेख नहीं करते। यहाँ पर भारतीय संदर्भ में जैक्स देरिदा के चिन्तन की अनुप्रयोगात्मक उपादेयता की सामर्थ्य न्यून प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि देरिदा अर्थ तत्व की भारतीय अवधारणा की उपेक्षा कर रहे हैं। किन्तु उनके चिन्तन का भारतीय मनीषियों की मान्यता से अद्‌भुत संतुलन दृष्टिगत होता है। उदाहरणार्थ- गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक कहती हैं कि प्रतिपादक व प्रतिपाद्य के अन्दर का आदर्श यौन भेद की अनुभूति के समान है। उनकी यह अवधारणा महाकवि कालिदास की उदात्त परिकल्पना के अनुरूप ज्ञात होती है क्योंकि जगत के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर की वन्दना के संदर्भ में वे 'वागर्थ' का सादृश्य प्रस्तुत करते हैं :

वागर्थौ इव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरौ।।

निष्कर्षतः जैक्स डेरिडा के चिन्तन की अनुप्रयोगात्मक उपादेयता, विशेष रूप से समाज-विज्ञान, भाषा-दर्शन, समसामयिक दर्शन के संदर्भ में इन्कार नहीं किया जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि उनके विखण्डन (डीकान्स्ट्रक्शन) उपागम को भारतीय संदर्भ में पुनर्विवेचित एवं पुनर्परिभाषित किया जाय।

संदर्भ

ठाकुर, देवेन्द्र नाथ (2006) : *उत्तर आधुनिक संदर्भ में वागर्थ की प्रासंगिकता,* आजकल, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, वर्ष 64, अंक-1, मई 2008

डेरिडा, जैक्स (1985) : *''लेटर टू ए जापानीज फ्रेंड डेरिडा ऐंड डिफरेन्स,''* वारविक : परौसिया, पृष्ठ-3

डेरिडा, जैक्स (1981) : *पोजीशन्स,* शिकागो : यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, प्रेस।

डेरिडा, जैक्स (1976) : *ऑफ ग्रामेटालोजी,* बाल्टीमोर : जॉन हापकिन यूनिवर्सिटी प्रेस।

तिवारी, भोलानाथ : *भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा,* समकालीन साहित्य समाचार, नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, वर्ष 17, अंक-4, अप्रैल 2008

द्विवेदी, कपिलदेव (2005) : *भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र,* वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।

नागराजन, एम.एस. (2006) : *पाइड पाइपर ऑफ डीकान्स्ट्रक्शन,* दि हिन्दू- 10 अक्टूबर।

प्रपन्न, राघवेन्द्र (2005) : *भाषा की शिक्षाशास्त्रीय मीमांसा,* परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना व प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, वर्ष 12, अंक-1, अप्रैल 2005

राय, छाया (1980) : *स्टडीज इन फिलोसोफिकल मेथड्स,* जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर।

रोर्टी, रिचार्ड (1931) : *फ्राम फार्मलिज्म टू पोस्टस्ट्रक्चरलिज्म,* दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, वा0 8, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

रोर्टी, रिचार्ड (1991) : *डीकान्स्ट्रक्शन ऐंड सरकमवेंशन,* एसेज आन हेडगर ऐंड अदर्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ-104

रोर्टी, रिचार्ड (1991) : *टू मीनिंग ऑफ लोगोसेन्ट्रीज्म,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ-117

शर्मा, उषा (2005) : *बच्चों का भाषा संसार,* प्राथमिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, वर्ष 30, अंक-4, अक्टूबर-दिसम्बर 2005

सिंह, के.एन. (1992) : *इवान इलिच के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शैक्षिक संदर्भ में प्रासंगिकता,* अप्रकाशित शोध ग्रंथ, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सिंह, आर.के. (1987) : *संस्कृत भाषा विज्ञान,* आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।

हर्सेल, एडमंड (1931) : *आइडियाज,* गिलसन : न्यूयार्क।

ISSN 0972-7515

आगामी अंक में

आलेख

अनिल सद्गोपाल
नव उदारवाद और शिक्षा का अधिकार

सुमित्रा सिंह और मैथिली रमण प्रसाद सिंह
भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा, स्वतंत्रता एवं अनुशासन की अवधारणा

दीपा कृष्ण और सरोज आनंद
प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता

आलोक गार्डिया और अशफाक अहमदी
इस्लाम में निहित शैक्षिक संकल्पनाएं

शोध टिप्पणी / संवाद

सुधीर कुमार शर्मा और नीतू शर्मा
सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन

रमेश कुमार
उत्तर प्रदेश की उच्चतर प्राथमिक स्तर पर संस्कृत की पाठ्यपुस्तकों में वर्णित मानव मूल्यों का अध्ययन

दिनेश कुमार सिंह
वर्तमान संदर्भ में शांति शिक्षा की सांदर्भिक उपादेयता

अन्य स्थाई स्तंभ